वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 456
ISBN-978-93-84003-67-8

अकृत्रिम चैत्यवृक्ष

(तीनलोक के)

(तिलोयपण्णत्ती-त्रिलोकसार-सिद्धान्तसारदीपक-लोकविभाग-
जंबूदीव-पण्णत्ती-आदिपुराण ग्रंथों से उद्धृत)

–संकलनकर्त्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

जंबूद्वीप हस्तिनापुर परिसर में विराजमान भगवान श्री शांतिनाथ कुंथुनाथ अरहनाथ एवं तीनलोक रचना के प्रतिष्ठापना दिवस फा. शु. 5, 23 फरवरी 2015 के उपलक्ष्य में प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

COURTESY–JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541	मूल्य
1100 प्रतियाँ	फा. शु. 5, 23 फरवरी 2015	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–पीठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

पंचमकाल में साक्षात् तीर्थंकर भगवन्तों की वाणी को सुनने का अवसर तो भव्यात्माओं को नहीं मिल सकता किन्तु उनके मुख से निकली द्वादशांग रूप वाणी का आज हम ग्रंथों के माध्यम से स्वाध्याय कर ज्ञानामृत का पान कर सकते हैं। द्वादशांग वाणी आज केवल अंश मात्र रूप में उपलब्ध है फिर भी अथाह है।

वर्तमान में साक्षात् सरस्वती माता के तो हमें दर्शन नहीं हो सकते किन्तु सरस्वती स्वरूपा परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शन कर हम धन्य हैं। जिन्होंने ''गागर में सागर'' के समान अनेक ग्रंथों का लेखन करके हमें प्रदान किये हैं। न्याय, व्याकरण, सिद्धांत, भूगोल आदि जिन कठिन विषयों से लोग दूर भागते हैं। लोहे के चने चबाने के समान मानते हैं उन विषयों में माताजी ने निरन्तर चिंतन मनन करके छाछ से नवनीत की तरह आगम के गूढ़ विषयों में से सार रूप में निकालकर आगम नवनीत प्रदान किया है और अभी भी लेखनी सतत प्रवाहमान है। पूज्य माताजी ये सब कार्य करने में अत्यन्त आत्माल्हाद का अनुभव करती हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपने वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से अभी तक पूज्य माताजी द्वारा लिखित लगभग 400 ग्रंथों का प्रकाशन कर चुका है और निरंतर चालु है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित एवं संकलित अनेक कृतियों के प्रकाशन का सौभाग्य ग्रंथमाला को प्राप्त हो रहा है। जिनमें से एक और नई कृति ''अकृत्रिम चैत्यवृक्ष'' भी आप तक पहुँच रही है जो पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत करणानुयोग के ग्रंथों से संकलित है। इस पुस्तक के द्वारा अकृत्रिम जिनबिंबों की वंदना कर आप सभी अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करें और पुण्य का अर्जन करें यही मंगल भावना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

अर्थकर्ता भगवान महावीर के मुख से निःसृत वाणी को ग्रंथकर्ता श्री गौतम गणधर स्वामी ने संपूर्ण द्वादशांग के रूप में निबद्ध किया जो आज हमें अंश रूप में उपलब्ध है। वर्तमान में जैन आगम में उस द्वादशांग को चार अनुयोगों में निबद्ध किया गया है। जो हैं प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। जिसमें करणानुयोग के ग्रंथों में संपूर्ण तीन लोक का वर्णन आता है जिसमें अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक में स्थित कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों के विषय में हमें आगम के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान होता है।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्यगणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने 62 वर्ष के दीक्षित जीवन में किये गये चारों अनुयोगों के स्वाध्याय-अध्ययन से प्राप्त ज्ञान के अमृत को आज सार रूप में हमारे सामने अनेक लघु वृहद् पुस्तकों के द्वारा प्रदान किया है और कर रही हैं उनमें से ही एक और नई कृति हमारे सामने आ रही है ''अकृत्रिम चैत्यवृक्ष''। जिसमें पूज्य माताजी ने तिलोयपण्णती, त्रिलोकसार, लोक विभाग, जंबूद्वीवपण्णत्ती, सिद्धांतसार दीपक आदि करणानुयोग के ग्रंथों से निकाल कर तीनलोक के संपूर्ण अकृत्रिम चैत्यवृक्षों का सप्रमाण वर्णन किया है।

अधोलोक में भवनवासी व व्यंतर देवों के भवनों के बाहर वेदी एवं परकोटे में तथा इन्द्रों के यहाँ ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष हैं। वेदी के बाह्य भाग में चैत्यवृक्षों से सहित चार प्रकार के वन होते हैं। जिनमें भवनवासी देवों के यहाँ चैत्यवृक्षों के मूलभाग में चारों दिशाओं में प्रत्येक में पल्यंकासन से स्थित पांच–पांच जिनप्रतिमाएँ तथा व्यंतर देवों के यहाँ चार–चार सुवर्णमय प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं।

मध्यलोक में जंबूद्वीप के परकोटे में, पांडुकवन के जिनमंदिरों में चैत्यवृक्ष हैं जिनमें प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित चार–चार जिन और सिद्धों की प्रतिमाएँ हैं।

आठवें नंदीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं में चार–चार बावड़ी के चारों ओर चार–चार वन उद्यान हैं। इनमें चौंसठ चैत्यवृक्ष हैं।

जंबूद्वीप से आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् पुनः उसी नाम का दूसरा जंबूद्वीप आता है जिसकी रचना पूर्व जंबूद्वीप से भिन्न है। इस द्वीप में भी अनेक देवों के नगर हैं जिनमें विजय नाम के देव शोभायमान होते हैं। जिनके प्रासादों में जिनमंदिर भी हैं। नगरों के बारह चारों ओर वनखण्ड हैं जो चैत्यवृक्षों से संयुक्त हैं। जैसा कि तिलोयपण्णत्ती ग्रंथ में कहा है–

एदेसुं चेत्तदुमा भावणचेत्तप्पमाणसारिच्छा।
ताण चउसु दिसासुं चउचउजिणणाहपडिमाओ।।230।।

अर्थात् इन वनों में भावनलोक के चैत्यवृक्षों के प्रमाण से सदृश जो चैत्यवृक्ष हैं स्थित हैं उनकी चारों दिशाओं में चार–चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं।

ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देवों के नगर के बाहर उद्यान में, सौधर्म आदि स्वर्गों में, प्रत्येक कल्प में चारों पार्श्वभागों में विराजमान ऐसी प्रतिमाओं से सुशोभित न्यग्रोध आयाग वृक्ष होते हैं। ये वृक्ष प्रमाण में जंबूवृक्ष के समान होते हैं। जिनमें मूल भाग में प्रत्येक दिशा में एक–एक जिनप्रतिमा होती है। नवग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष होते हैं ऐसा तिलोयपण्णत्ती ग्रंथ में वर्णन आया है।

तीर्थंकर भगवान के समवसरणों में चौथी उपवन भूमि तथा छठी कल्पभूमि में भी चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ होती हैं। जो प्रत्येक दिशा में एक–एक हैं। कल्पभूमि में नमेरू, मंदार, संतानक और परिजात ये चार सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं जिनमें चार–चार रत्नमयी सिद्धों की प्रतिमाएँ होती हैं ऐसा तिलोयपण्णत्ती, आदिपुराण ग्रंथों में वर्णित है।

अंत में चैत्यवंदनाष्टक में पूज्य माताजी ने मात्र 9 श्लोकों में संपूर्ण तीनों लोकों के अकृत्रिम जिनमंदिरों की वंदना की है जिसका प्रतिदिन पाठ करके हम भी उन जिनालयों के वंदन का पुण्य प्राप्त कर सकते हैं।

इस पुस्तक का स्वाध्याय कर आप सभी सही आगमोक्त ज्ञान प्राप्त कर अपने ज्ञान की वृद्धि करें तभी पूज्य माताजी का परिश्रम करना सार्थक होगा। इस अमूल्य कृति को प्रदान करने वाली पूज्य माताजी के चरणों में शत्–शत् नमन।

दो शब्द

–आर्यिका सुदृढ़मती (संघस्थ)

जो भविजन तीनों लोकों के, सब चैत्यवृक्ष को यजते हैं।
श्री जिनबिंबों के वंदन से, संपूर्ण सौख्य को भजते हैं।।

तीनलोक हमारे जैन शासन का सर्वमान्य प्रतीक चिन्ह है। जिसकी ऊँचाई 14 राजू मानी गई है। तथा जिसके बीचों–बीच में 13 राजू ऊँची त्रस नाडी है जिसके अंदर ही तीनों लोक माने हैं। इन तीनों लोकों में ही संपूर्ण कृत्रिम–अकृत्रिम चैत्य–चैत्यालय हैं जिनमें से वृक्षों की कटनियों पर जिनप्रतिमाएँ हैं तो वे वृक्ष चैत्यवृक्ष कहलाते हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रस्तुत पुस्तक में तीन लोक में कहाँ पर कृत्रिम–अकृत्रिम चैत्यवृक्ष विद्यमान हैं इसका करणानुयोग के ग्रंथों से निकालकर एक जगह संकलन कर दिया है जो हम सबके लिये अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्धक है क्योंकि इतने बड़े–बड़े ग्रंथों का स्वाध्याय साधारण जनमानस के लिये अति दुरूह कार्य है। इन नये–नये विषयों को पूज्य माताजी जैन आगम में से आलोडन करके हमें मक्खन के रूप में प्रदान करती हैं जो हमारे ऊपर बड़ा उपकार है।

करणानुयोग के विषय को प्रायः बहुत कम विद्वान् और साधु जन स्वाध्याय करते हैं क्योंकि यह कठिन विषय माना जाता है, परन्तु पूज्य माताजी ने तो जंबूद्वीप–हस्तिनापुर में साक्षात् जंबूद्वीप, तेरहद्वीप और तीनलोक की रचना को धरती पर साकार करवाकर इस विषय को अत्यन्त सरल बना दिया है। जिसे देखकर हर व्यक्ति अति आनंदित होता है। तीन लोक तथा तेरहद्वीप की रचना में कहाँ–कहाँ पर चैत्यवृक्ष स्थित हैं आप साक्षात् आकर उनके दर्शन करके असीम पुण्य का अर्जन कर सकते हैं।

पूज्य माताजी अपने क्षण–क्षण का सदुपयोग करती हैं तथा प्रतिदिन तथा अस्वस्थ अवस्था में भी इन तीनों लोकों के जिनमंदिरों का ध्यान में परोक्ष चिन्तन करती रहती हैं। ऐसी महान माताजी की शिष्यता प्राप्त कर मुझे भी ऐसी अकृत्रिम रचनाओं की प्रतिकृतियों का दर्शन करने का सौभाग्य मिल रहा है यह बड़े पुण्य का प्रतिफल है। आगामी भवों में कभी साक्षात् भी इन अकृत्रिम रचनाओं का दर्शन लाभ प्राप्त हो इसी आशीर्वाद की कामना करते हुए पूज्य माताजी के चरणों में कोटि–कोटि नमन वंदामि। तभी तो ये पंक्तियाँ पूज्य माताजी के लिये अक्षरशः सत्य हैं–

ज्ञानमती माताजी तेरी, यही निशानी।
एक हाथ में पिछी, दूजे में जिनवाणी।।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा– भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मंगलाचरण	1
2.	चैत्यवृक्ष का वर्णन	3
	(अधोलोक के चैत्यवृक्ष)	
3.	भवनवासी देवों के जिनमंदिर	7
4.	भवनवासी देवों के चैत्यवृक्ष	9
5.	इन्द्रों के यहाँ ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष	11
6.	व्यंतर देवों के जिनमंदिर	13
7.	व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष (तिलोयपण्णत्ती से)	15
8.	व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष (सिद्धान्तसार दीपक से)	16
9.	व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष (लोकविभाग से)	18
	(मध्यलोक में चैत्यवृक्ष)	
10.	जंबूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष	19
11.	अकृत्रिम मंदिर में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ (पांडुकवन के जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष)	20
12.	अकृत्रिम मंदिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष सिद्धार्थवृक्ष एवं ध्वजाएँ (स्तूप व चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमाएँ)	26
13.	नंदीश्वरद्वीप में चैत्यवृक्ष	30
14.	द्वितीय जंबूद्वीप में जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष	34
	(ऊर्ध्वलोक के चैत्यवृक्ष)	
15.	वैमानिक देवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष	44
16.	सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर (ति. प. से)	46
17.	प्रत्येक इंद्र नगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष	47
18.	नवगैवेयक आदि में चैत्यवृक्ष	48
19.	इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा	48
20.	सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर चैत्यवृक्ष (लोकविभाग से)	49
21.	स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तंभ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि	51
22.	समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ	53
23.	समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ	55
24.	समवसरण में छठी भूमि में सिद्धार्थवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ	59
25.	चैत्यवंदनाष्टक	60
26.	प्रशस्ति	62

अकृत्रिम चैत्यवृक्ष

मंगलाचरणम्

अर्हन्तस्तीर्थकर्तारो, नित्यं कुर्वन्तु मंगलम्।
एतेषां प्रतिमाश्चापि, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।१।।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदि–समिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपर–समयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि[१]।

१. श्री गौतम गणधर विरचित निषीधिका दण्डक।

–चौबोल–छंद–

मेरा मंगल करें सर्व, अर्हंत सिद्ध बुद्धा जिनराज।
केवलि जिन अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी ऋषिराज।।
चौदश पूर्व अंग पारंगत, अंगबाह्य श्रुतसंपन्ना।
बारह तप तपसी गुण और, गुणोंयुत महाऋद्धि शरणा।।२।।

तीर्थ और तीर्थंकर प्रवचन, प्रवचनयुत व ज्ञान ज्ञानी।
सद्दर्शन सम्यग्दृष्टी, संयम व संयमी मुनिध्यानी।।
विनय तथा सुविनययुत साधू, ब्रह्मचर्य व्रत ब्रह्मचारी।
गुप्ति गुप्तिधर मुक्ति मुक्तियुत, समिति और समितिधारी।।३।।

स्वमत और परमत के ज्ञाता, क्षमाशील अरु क्षपक मुनी।
क्षीणमोह यति बोधितबुद्ध, बुद्धिऋद्धीयुत परममुनी।।
चैत्यवृक्ष जिनबिम्ब अकृत्रिम-कृत्रिम जितने त्रिभुवन में।
मेरा मंगल करें सभी ये, ये मंगलप्रद तिहुँजग में।।४।।

–अनुष्टुप् छंद–

अकृत्रिमजिनागारेष्–वन्यत्रापि च ये स्थिताः।
चैत्यवृक्षाश्चतुर्दिक्षु, ते मे कुर्वन्तु मंगलम्।।५।।

चैत्यवृक्षेषु चैत्यानि, चतुर्दिक्षु विभान्त्यपि।
तानि सर्वाणि बिम्बानि, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।६।।

–चौबोल–छंद–

चौबीसों तीर्थंकर प्रभु को, भक्तिभाव से नमन करूँ।
उनके श्री चरणों में शत–शत, प्रणमन कर भवतपन हरूँ।।
जन्म–जरा –मृत्यु को नाशा, मृत्युञ्जयपद प्राप्त किया।
उनके चरणों के आश्रय से, मैंने समकित रत्न लिया।।७।।

चैत्यवृक्ष का वर्णन

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में बैठकर श्रीगौतमस्वामी ने "मम मंगलं अरहंता य..... चेद्दियरुक्खा य चेदियाणि" स्तुति की है। टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने कहा है—

"चेदियरुक्खा य चैत्यवृक्षाश्च। चैत्यानि हि जिनादिप्रतिबिम्बानि। तेषायाधारभूता वृक्षाश्चैत्यवृक्षाः। **चेदियाणि।** कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यानि। य अर्हंत इत्यादयश्चैत्यवृक्षपर्यन्ता व्याख्यातास्ते सर्वे मम मंगलं भवन्त्विति सम्बन्धः।

चैत्यवृक्ष—चैत्य अर्थात् जिन आदि के प्रतिबिंब, उनके आधारभूत जो वृक्ष हैं वे चैत्यवृक्ष कहलाते हैं और जो चैत्य–कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमायें हैं। ये अर्हंत इत्यादि से लेकर चैत्यवृक्ष पर्यंत जो कहे गये हैं वे सब मेरे लिये मंगल करने वाले होवे ऐसा संबंध लगाना।

यहाँ मंगलाचरण में अर्हंत से लेकर पूरा मंगलाचण लिया है।

तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों में चैत्यवृक्षों में मूल में—

तृतीय कटनी पर चारों दिशाओं में जिनप्रतिमायें मानी हैं, ये चैत्यवृक्ष कहाँ कहाँ हैं ? इस ग्रंथ में उनका संक्षिप्त संकलन किया गया है। मूलभाग में प्रतिमाये हैं—इसमें मूलभाग से तृतीय कटनी लेना ऐसा आदिपुराण में स्पष्ट है। सर्वप्रथम चैत्यवृक्ष के दो भेद हैं—अकृत्रिम और कृत्रिम।

जो अनादिनिधन देवविमान, जिनमंदिर जंबूद्वीप आदि के परकोटे में इंद्रों के यहाँ और जिनमंदिरों में 'चैत्यवृक्ष' हैं ये अकृत्रिम–अनादिनिधन हैं।

जो समवसरण में कुबेर द्वारा निर्मित चतुर्थभूमि व छठी भूमि में चैत्यवृक्ष और सिद्धार्थवृक्ष हैं। ये कृत्रिम माने गये हैं।

पुनश्च—

अकृत्रिम चैत्यवृक्ष भी तीन प्रकार के हैं—

जो देवविमान, जंबूद्वीप के परकोटे, जिनमंदिर के परकोटे में हैं, नंदीश्वरद्वीप में बावड़ी के चारों तरफ उद्यानों में हैं।

वे चारों दिशाओं में वनों में—उद्यानों में अशोक, सप्तच्छद, चंपक व आम्रवृक्ष के हैं।

२. जो अकृत्रिम मंदिरों में विशाल स्थल में हैं जिनके परिवार वृक्ष एक लाख, चालीस हजार उन्नीस हैं।

३. जो भवनवासी व्यंतर और वैमानिक देवों के इंद्रों के महल में ओलगशाला के आगे भिन्न–भिन्न नामों के हैं। वे तृतीय प्रकार के हैं।

इन चैत्यवृक्ष की प्रतिमाओं के आगे मानस्तंभ भी होते हैं।

इन सभी चैत्यवृक्षों में मूलभाग में ही जिनप्रतिमायें हैं। यथा—

"चेत्ततरूणं मूले पत्तेक्कं चउदिसासु पंचेव।
चेट्ठंत्ति जिणप्पडिमा पलियंकठिया सुरेहिं महणिज्जा[1]।।३८।।

चैत्यवृक्षों में मूल में प्रत्येक चारों दिशाओं में पाँच–पाँच जिनप्रतिमायें पर्यंकासन से विराजमान हैं, ये देवों द्वारा पूज्य हैं। यह भवनवासी देवों के भवनों का प्रकरण है। आगे अन्यत्र एक–एक दिशा में एक–एक जिनप्रतिमायें मानी हैं। यथा स्थान इस ग्रंथ में स्पष्टीकरण है।

अब देखिये कृत्रिम चैत्यवृक्षों के दो भेद—

१. समवसरण में चतुर्थ उवपन भूमि में चारों दिशा में अशोक, सप्तच्छद, चंपक व आम्रवृक्ष के वनों में क्रम से इन्हीं नाम के चैत्यवृक्ष हैं। इनमें अर्हंतों की प्रतिमायें हैं।

२. समवसरण में छठी कल्पवृक्षभूमि में नमेरु, मंदार, संतानक व पारिजात नाम के सिद्धार्थ वृक्ष हैं इनमें चारों दिशाओं में सिद्धों की प्रतिमायें हैं।

जो तृतीय प्रकार के चैत्यवृक्ष हैं, वे भवनवासी, व्यंतर व वैमानिक देवों के महलों में ओलगशाला के आगे माने गये हैं। इसमें ज्योतिर्वासी देवों के विमानों का उल्लेख कहीं नहीं मिला है फिर भी अनुमान से एवं चर्चा से ऐसा प्रतीत होता है कि इन विमानों में अकृत्रिम जिनमंदिरों के परकोटे में उपवन भूमि में ये 'चैत्यवृक्ष' संभावित हैं। यदि हैं तो ये असंख्यातों ज्योतिर्विमानों में असंख्यातों 'चैत्यवृक्ष हो जावेंगे।

इस ग्रंथ में ३४ पृ. पर द्वितीय जंबूद्वीप आया है।

---

१. तिलोयपण्णत्ती, अधिकार २, पृ. ११५।

इसका स्पष्टीकरण—

जंबूद्वीप लवण समुद्र को आदि लेकर असंख्यातों द्वीप, समुद्र माने गये हैं। शब्द–संख्यात ही हैं अतः संख्यात द्वीप–समुद्रों के बाद पुनः–पुनः वे ही नाम आ जायेंगे ऐसा ग्रंथों में स्पष्टीकरण है।

फिर भी यह ध्यान रखना है कि द्वितीय जंबूद्वीप में इस प्रथम जंबूद्वीप जैसी रचना सुमेरु पर्वत कुलाचल आदि एवं भरतक्षेत्र, विदेहक्षेत्र आदि नहीं हैं न वहां कर्मभूमि ही है।

कर्मभूमि की व्यवस्था ढाईद्वीपों तक ही है। आगे अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप में उधर के आधे स्वयंभूरण द्वीप व अंतिम स्वंयभूरमण समुद्र में कर्मभूमि है फिर भी मात्र वहां तिर्यंच ही हैं मनुष्य नहीं हैं। मनुष्यों का अस्तित्व मात्र ढाईद्वीप तक ही है।

ढाईद्वीप से परे मध्य के असंख्यातों द्वीपों में जघन्यभोगभूमि की व्यवस्था है वहां मात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच युगलिया ही माने गये हैं, ये असंख्यातों भोगभूमियाँ तिर्यंच हैं।

इस प्रकार उपलब्ध चैत्यवृक्षों का वर्णन इस ग्रंथ में उद्धृत किया गया है—

अकृत्रिम मंदिर के चारों ओर तीन परकोटे माने हैं। प्रथम परकोटे के अंतराल में उपवन भूमि है। उसमें चारों दिशाओं में अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्रवन–उद्यान हैं। इनमें उन्हीं–उन्हीं नाम के चैत्यवृक्ष हैं। जिनमें मूलभाग में–तृतीय कटनी पर चारों दिशाओं में एक–एक जिनप्रतिमायें हैं। पृ. ४५-४६ पर त्रिलोकसार ग्रंथ की गाथा ५०२-५०३, उद्धृत हैं।

समवसरण में भी चतुर्थ उपवन भूमि में अशोक आदि उपर्युक्त नाम के चार दिशा के चार उद्यानों में एक–एक चैत्यवृक्ष है। उनमें प्रत्येक चैत्यवृक्ष में चार–चार अर्थात् एक–एक दिशा में एक–एक जिनप्रतिमायें हैं। देखें पृ. ५३ पर। तिलोयपण्णत्ति पृ. २४८ से उद्धृत प्रकरण है।

द्वितीय भेद में जो चैत्यवृक्ष वर्णित हैं। उनके १,४०, ११९ परिवार वृक्ष हैं। उनमें प्रत्येक में चारों दिशाओं में एक–एक जिनप्रतिमायें होने से ये प्रतिमायें (१४०१२० × ४ = ५६०४८०) पांच लाख, साठ हजार चार सौ अस्सी हो

जाती हैं। एक चैत्यवृक्ष के परिवारवृक्ष समेत ये प्रतिमायें हैं। देखें–पांडुकवन के जिनमंदिर में चैत्यवृक्षों का प्रमाण यहाँ पृ. २१ पर। तिलोयपण्णत्ति से उद्धृत गाथा १९०५ से १९०९ तक है।

चैत्यवृक्षों के मूलभाग में जो प्रतिमायें हैं, ये तृतीय कटनी पर हैं। देखें प्रमाण–इस ग्रंथ में उद्धृत आदिपुराण के प्रमाण पृ० ५७-५८ मूलग्रंथ आदिपुराण पर्व २२ में यह प्रकरण है—

अशोकवन के मध्यभाग में एक बड़ा भारी आशोकवृक्ष था जो कि सुवर्ण की बनी हुई तीन कटनीदार ऊँची पीठिका पर स्थित था। पर्व २२, श्लोक १८४ है।

इस ग्रंथ का स्वाध्याय करके आप परोक्ष से ही चैत्यवृक्षों की प्रतिमाओं की वंदना करके पुण्यसंचय करते रहें, यही इस ग्रंथ के संकलन का अभिप्राय है।

विशेष—वर्तमान में कोई–कोई विद्वान् चैत्यवृक्षों की चारों दिशाओं की चार महाशाखाओं पर जिनप्रतिमा मानते हैं सो नितांत अनुचित है। आप सभी विद्वान् इस ग्रंथ का अवलोकन करें तथा तिलोयपण्णत्ती आदि ग्रंथों का भी स्वाध्याय अवश्य करें।

किन्हीं ने तो चैत्यवृक्ष में पत्ते–पत्ते पर अनेक प्रतिमायें मान ली हैं जो कि हास्यास्पद ही है।

पुनश्च—

इस ग्रंथ में वर्णित असंख्यातों चैत्यवृक्षों में विराजमान, असंख्यातों जिनप्रतिमाओं को मेरा कोटि–कोटि नमन है।

अधोलोक के चैत्यवृक्ष

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

भव्वजणमोक्खजणणं मुणिंददेविंदपणदपयकमलं।
णमिय अभिणंदणेसं भावणलोयं परूवेमो[१]।।१।।

रयणप्पहपुढवीए खरभाए पंकबहुलभागम्मि।
भवणसुराणं भवणाइं होतिं वररयणसोहाणि।।७।।

सोलयसहस्समेत्तो खरभागो पंकबहुलभागो वि।
चउसीदिसहस्साणिं जोयणलक्ख दुवे मिलिदा।।८।।

१६०००।८४०००।

असुरा णागसुवण्णा दीओवहिथणिदविज्जुदिसअग्गी।
वाउकुमारा परया दसभेदा होंति भवणसुरा।।९।।।

चूडामणिअहिगरुडा करिमयरा वड्ढमाणवज्जहरी।
कलसो तुरवो मउडे कमसो चिण्हाणि एदाणि।।१०।।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

जो भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं तथा जिनके चरणकमलों में मुनीन्द्र अर्थात् गणधर एवं देवों के इन्द्रों ने नमस्कार किया है, ऐसे अभिनन्दन स्वामी को नमस्कार करके भावन—लोक का निरूपण करते हैं।।१।। रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पंकबहुलभाग में उत्कृष्ट रत्नों से शोभायमान भवनवासी देवों के भवन हैं।।७।। इन दोनों भागों में से खर भाग सोलह हजार योजन और पंकबहुलभाग चौरासी हजार योजन प्रमाण मोटा है। उक्त दोनों भागों की मोटाई मिलकर एक लाख योजन प्रमाण है।।८।।

खरभाग की मोटाई १६०००+पंकबहुलभाग ८४०००=१००००० योजन।

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार, इस प्रकार भवनवासी देव दश प्रकार के हैं।।९।। उपर्युक्त दश भवनवासी देवों के मुकुट में क्रम से चूड़ामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्द्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिंह, कलश और तुरग, ये (दश)

१. तिलोयपण्णत्ती, अधिकार ३, पृ. ११० से ११८ तक।

चउसट्ठी चउसीदी बावत्तरि होंति छस्सु ठाणेसु।
छाहत्तरि छण्णउदी लक्खाणिं भवणवासिभवणाणिं।।११।।

६४०००००। ८४०००००। ७२०००००। ७६०००००। ७६०००००।
७६०००००।
७६०००००। ७६०००००। ७६०००००। ९६०००००।

एदाणं भवणाणं एक्कस्सिं मेलिदाण परिमाणं।
बाहत्तरि लक्खाणिं कोडीओ सत्तमेत्ताओ।।१२।।

७,७२०००००।

दससु कुलेसुं पुह पुह दो दो इंदा हवंति णियमेण।
ते एक्कस्सिं मिलिदा वीस विराजंति भूदीहिं।।१३।।

भवणा भवणपुराणिं आवासा अ सुराण होदि तिविहा णं।
रयणप्पहाए भवणा दीवसमुद्दाण उवरि भवणपुरा।।२२।।

दहसेलदुमादीणं रम्माणं उवरि होंति आवासा।
णागादीणं केसिं तियणिलया भवणमेक्कमसुराणं।।२३।।

चिह्न होते हैं।।१०।। चौंसठ लाख, चौरासी लाख, बहत्तर लाख, छह स्थानों में छियत्तर लाख और छियानबे लाख, इस प्रकार क्रम से दश स्थानों में उन भवनवासी देवों के भवनों की संख्या है।।११।। असुरकुमार ६४०००००, नागकुमार ८४०००००, सुपर्णकुमार ७२०००००, द्वीपकुमार ७६०००००, उदधिकुमार ७६०००००, स्तनितकुमार ७६०००००, विद्युत्कुमार ७६०००००, दिक्कुमार ७६०००००, अग्निकुमार ७६०००००, वायुकुमार ९६०००००। इन सब भवनों के प्रमाण को एकत्र मिलाने पर सात करोड़ बहत्तर लाख होते हैं।।१२।। ७,७२०००००।

उपर्युक्त दश भवनवासियों के नियम से पृथक्-पृथक् दो-दो इन्द्र होते हैं। वे सब मिलकर बीस इन्द्र होते हैं , जो अपनी-अपनी विभूति से शोभायमान हैं।।१३।।

भवनवासी देवों के निवासस्थान भवन, भवनपुर और आवास के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवासस्थानों को भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर स्थित निवासस्थानों को भवनपुर और रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवास स्थानों को आवास कहते हैं। नागकुमारादिक देवों में से किन्हीं के तो भवन, भवनपुर और आवासरूप तीनों ही तरह के निवासस्थान होते हैं परन्तु असुरकुमारों के केवल एक भवनरूप ही निवासस्थान होते हैं।।२२-२३।।

अप्पमहद्धियममज्झिमभावणदेवाण होंति भवणाणि।
दुगबादालसहस्सा लक्खमधोधो खिदीय गंताउ।।२४।।

२०००। ४२०००। १००००००।

अप्पमहद्धियमज्झिमभावणदेवाण वासवित्थारो।
समचउरस्सा भवणा वज्जामयद्दारछज्जिया सव्वे।।२५।।

बहलत्ते तिसयाणिं संखासंखेज्जजोयणा वासे।
संखेज्जरुंदभवणेसु भवणदेवा वसंति संखेज्जा।।२६।।

संखातीदा सेयं छत्तीससुरा य होदि संखेज्जा (?)।
भवणसरूवा एदे वित्थारा होइ जाणिज्जो ।।२७।।

भवनवासी देवों के चैत्यवृक्ष

भवनों के वेदी-परकोटे में चारों तरफ चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ती से)

तेसिं चउसु दिसासुं जिणदिट्ठपमाणजोयणे गंता।
मज्झम्मि दिव्ववेदी पुह पुह वेट्ठेदि एक्केक्का।।२८।।

अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के भवन क्रमशः चित्रा पृथिवी के नीचे-नीचे दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजनपर्यन्त जाकर हैं।।२४।। अल्पर्द्धिक २०००, महर्द्धिक ४२०००, मध्य ऋद्धिधारक १००००००। अब अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के निवासस्थानों का विस्तार कहा जाता है। ये सब भवन समचतुष्कोण तथा वज्रमय द्वारों से शोभायमान हैं।।२५।। ये भवन बाहल्य में (ऊँचाई में) तीन सौ योजन और विस्तार में संख्यात व असंख्यात योजन प्रमाण होते हैं। इनमें से संख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में संख्यात और शेष असंख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में असंख्यात भवनवासी देव रहते हैं, ऐसा भवनों का स्वरूप और विस्तार जानना चाहिए।।२६-२७।।

भवनवासी देवों के चैत्यवृक्ष

वेदी-परकोटे में भवनों के चारों तरफ चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ती से)

उन भवनों की चारों दिशाओं में जिनभगवान् से उपदिष्ट योजन प्रमाण जाकर एक-एक दिव्य वेदी (कोट) पृथक्-पृथक् उन भवनों को मध्य में वेष्टित करती है।।२८।।

दो कोसा उच्छेहा वेदीणमकट्टिमाण सव्वाणं।
पंचसयाणिं दंडा वासो वररयणछण्णाणं।।२९।।

गोउरदारजुदाओ उवरिम्मि जिणिंदगेहसहिदाओ।
भवणसुररक्खिदाओ वेदीओ ताओ सोहंति।।३०।।

तब्बाहिरे असोयंसत्तच्छदचंपचूदवण पुण्णा।
णियणाणातरुजुत्ता चेट्ठंति चेत्ततरूसहिदा।।३१।।

चेत्तदुमत्थलरुंदं दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा।
चत्तारो मज्झम्मि य अंते कोसद्धमुच्छेहो।।३२।।

छद्दोभूमुहरुंदा चउजोयणउच्छिदाणि पीढाणि।
पीढोवरि बहुमज्झे रम्मा चेट्ठंति चेत्तदुमा।।३३।।

। ६ । २ । ४ ।

पत्तेक्कं रुक्खाणं अवगाढं कोसमेक्कमुद्दिट्ठं।
जोयण खंदुच्छेहो साहादीहत्तणं च चत्तारि।।३४।।

को १ । जो १ । ४।

उत्तमोत्तम रत्नों से व्याप्त इन सब अकृत्रिम वेदियों की ऊँचाई दो कोस और विस्तार पांच सौ धनुष प्रमाण होता है।।२९।। गोपुरद्वारों से युक्त और उपरिम भाग में **जिनमन्दिरों से सहित** वे वेदियां भवनवासी देवों से रक्षित होती हुई सुशोभित होती हैं।।३०।। वेदियों के बाह्य भाग में **चैत्यवृक्षों से सहित** और अपने नाना वृक्षों से युक्त **पवित्र अशोक वन, सप्तच्छदवन, चंपकवन और आम्रवन स्थित हैं।।३१।।** चैत्यवृक्षों के स्थल का विस्तार दो सौ पचास योजन तथा ऊँचाई मध्य में चार योजन और अन्त में अर्ध कोस प्रमाण होती है।। ३२।।

पीठों की भूमि का विस्तार छह योजन, मुख का विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन होती है। इन पीठों के ऊपर बहुमध्यभाग में रमणीय चैत्यवृक्ष स्थित होते हैं।। ३३।। भूविस्तार ६, मु. वि. २, ऊँचाई ४ यो.। प्रत्येक वृक्ष का अवगाढ़ एक कोस, स्कंध का उत्सेध एक योजन और शाखाओं की लंबाई चार योजन प्रमाण कही गयी है।।३४।। अवगाढ़ को. १, स्कन्ध की ऊँचाई यो. १, शाखाओं की लंबाई यो. ४।

विविहवररयणसाहा विचित्तकुसुमोवसोभिदा सव्वे।
वरमरगयवरपत्ता दिव्वतरू ते विरायंति।।३५।।

विविहंकुरुचेंचइया विविहफला विविहरयणपरिणामा।
छत्तादिछत्तजुत्ता घंटाजालादिरमणिज्जा।।३६।।

आदिणिहणेण हीणा पुढिविमया सव्वभवणचेत्तदुमा।
जीवुप्पत्तिलयाणं होंति णिमित्ताणि ते णियमा।।३७।।

चेत्ततरूणं मूले पत्तेक्कं चउदिसासु पंचेव।
चेट्ठंति जिणप्पडिमा पलियंकठिया सुरेहिं महणिज्जा।।३८।।

चउतोरणाभिरामा अट्ठमहामंगलेहि सोहिल्ला।
वररयणणिम्मिदेहिं माणत्थंभेहि अइरम्मा।।३९।।

इन्द्रों के यहाँ ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष

सव्वेसिं इंदाणं चिण्हाणि तिरीटमेव मणिखजिदं।
पडिइंदादिचउण्हं चिण्हं मउडं मुणेदव्वा[१]।।१३४।।

वे सब दिव्य वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों की शाखाओं से युक्त, विचित्र पुष्पों से अलंकृत और उत्कृष्ट मरकत मणिमय उत्तम पत्रों से व्याप्त होते हुए अतिशय शोभा को प्राप्त हैं।।३५।।

विविध प्रकार के अंकुरों से मंडित, अनेक प्रकार के फलों से युक्त, नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित, छत्र के ऊपर छत्र से संयुक्त, घंटाजालादि से रमणीय और आदि-अन्त से रहित, ऐसे वे पृथिवी के परिणामरूप सब भवनों के चैत्यवृक्ष नियम से जीवों की उत्पत्ति और विनाश के निमित्त होते हैं।।३६-३७।। चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों से पूजनीय **पांच-पांच जिनप्रतिमाएँ विराजमान** होती हैं।।३८।।

ये जिनप्रतिमाएँ चार तोरणों से रमणीय, आठ महामंगल द्रव्यों से सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नों से निर्मित मानस्तम्भों से अतिशय शोभायमान होती हैं।।३९।।

इन्द्रों के यहां ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष

सब इन्द्रों के चिन्ह मणियों से खचित किरीट (तीन शिखर वाला मुकुट) और प्रतीन्द्रादिक चार देवों का चिन्ह साधारण मुकुट ही जानना चाहिये ।।१३४।।

१. तिलोयपण्णत्ती पृ. १२८।

ओलगसालापुरदो चेत्तदुमा होंति विविहरयणमया।
असुरप्पहुदिकुलाणं ते चिण्हाइं इमा होंति।।१३५।।

अस्सत्थसत्तवण्णा संमलजुबू य वेतसकडंबा।
तह पीयंगू सिरसा पलासरायद्दुमा कमसो।।१३६।।

चेत्तदुमामूलेसुं पत्तेक्कं चउदिसासु चेट्ठंते।
पंच जिणिंदप्पडिमा पलियंकठिदी परमरम्मा।।१३७।।

पडिमाणं अग्गेसुं रयणत्थंभा हवंति वीस फुडं।
पडिमापीढसरिच्छा पीडा थंभाण णादव्वा।।१३८।।

एक्केक्कमाणथंभे अट्ठावीसं जिणिंदपडिमाओ।
चउसु दिसासुं सिंहासणविण्णासजुत्ताओ।।१३९।।

सेसाओ वण्णणाओ चउवणमज्झत्थचेत्ततरुसरिसा।
छत्तादिछत्तपहुदीजुदाण जिणणाहपडिमाणं।।१४०।।

संखातीदा सेढी भावणदेवाण दसविकप्पाणं।
तीए पमाणं सेढी बिदंगुलपढममूलहदा।।१४३।।

ओलगशालाओं के आगे विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित चैत्यवृक्ष होते हैं । ये (अग्रिमगाथा में निर्दिष्ट) चैत्यवृक्ष असुरादिक कुलों से चिन्हरूप होते हैं ।।१३५।। अश्वत्थ (पीपल), सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदंब तथा प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम, ये दश चैत्यवृक्ष क्रम से उन असुरादिक कुलों के चिन्हरूप होते हैं।।१३६।। **प्रत्येक चैत्यवृक्ष के मूल भाग में चारों ओर पल्यंकासन से स्थित परम रमणीय पांच-पांच जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान होती हैं।।१३७।।** प्रतिमाओं के आगे बीस रत्नमय स्तम्भ (मानस्तम्भ) होते हैं । स्तम्भों की पीठिकायें प्रतिमाओं की पीठिकाओं के सदृश जानना चाहिये।।१३८।।

एक-एक मानस्तम्भ के ऊपर चारों दिशाओं में सिंहासन के विन्यास से युक्त अट्ठाईस जिनेन्द्रप्रतिमायें होती हैं ।।१३९।।

इस प्रकार बीस मानस्तम्भों में कुल ५६० प्रतिमाएं होती हैं।

छत्र के ऊपर छत्र इत्यादिक से युक्त जिनेन्द्रप्रतिमाओं का शेष वर्णन चार वनों के मध्य में स्थित चैत्यवृक्षों के सदृश जानना चाहिये ।।१४०।। दश भेदरूप भवनवासी देवों का प्रमाण असंख्यात जगश्रेणीरूप है। उसका प्रमाण घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से गुणित जगश्रेणीमात्र है ।।१४३।।

व्यंतरदेवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

चोत्तीसादिसएहिं विम्हयजणणं सुरिंदपहुदीणं।
णमिऊण सीदलजिणं वेंतरलोयं णिरूवेमा[१]।।१।।

रज्जुकदी गुणिदव्वा णवणउदिसहरसअधियलक्खेणं।
तम्मज्झे तिवियप्पा वेंतरदेवाण होंति पुरा।।५।।

४९। १,९९०००।

भवणं भवणपुराणिं आवासा इय भवंति तिवियप्पा।
जिणमुहकमलविणिग्गदवेंतरपण्णत्तिणामाए।।६।।

रयणप्पहपुढवीए भवणाणिं दीवउवहिउवरिम्मि।
भवणपुराणिं दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा।।७।।

बारससहस्सजोयणपरिमाणं होदि जेट्ठभवणाणं।
पत्तेक्कं विक्खंभा तिण्णि सयाणं च बहलत्तं।।८।।

१२०००।३००।।

पणुवीस जोयणाणिं रुंदपमाणं जहण्णभवणाणं।
पत्तेक्कं बहलत्तं तिचउब्भागप्पमाणं च।।९।।

व्यंतर देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

चौंतीस अतिशयों से देवेंद्र आदि जनों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शीतल जिनेन्द्र को नमस्कार करके व्यंतरलोक का निरूपण करते हैं।।१।। राजू के वर्ग को एक लाख निन्यानवे हजार से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उसके मध्य में व्यंतर देवों के तीन प्रकार के पुर होते हैं।।५।। जिन भगवान् के मुखरूप कमल से निकले हुए व्यंतरप्रज्ञप्ति नामक अधिकार में भवन, भवनपुर और आवास इस प्रकार के भवन कहे गये हैं।।६।। इनमें से रत्नप्रभा पृथ्वी में भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर भवनपुर और द्रह एवं पर्वतादिकों के ऊपर आवास होते हैं ।।७।। उत्कृष्ट भवनों में से प्रत्येक का विस्तार बारह हजार योजन और बाहल्य तीन सौ योजन प्रमाण है।।८।।१२०००।३००।। जघन्य भवनों में से प्रत्येक के विस्तार का प्रमाण पच्चीस योजन और बाहल्य एक योजन के चार भागों में से तीन भाग मात्र है।।९।।

१. तिलोयपण्णत्ती अधिकार ६, पृ. ६४१ से ६४५, ६५५।

अहवा रुंदपमाणं पुह पुह कोसो जहण्णभवणाणं।
तव्वेदीउच्छेहो कोदंडाणिं पि पणुवीसं।।१०।।

को १। दं २५।। पाठान्तरम्।

बहलतिभागपमाणा कूडा भवणाण होंति बहुमज्झे।
वेदी चउवणतोरणदुवारपहुदीहिं रमणिज्जा।।११।।

कूडाण उवरि भागे चेट्ठंते जिणवरिंदपासादा।
कणयमया रजदमया रयणमया विविहविण्णासा।।१२।।

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षस-भूतपिशाचाः।।११।।[१]

अथवा जघन्य भवनों के विस्तार का प्रमाण पृथक्-पृथक् एक कोश और उनकी वेदी की ऊँचाई पच्चीस धनुष है।।१०।। को.१।दं.२५।। पाठान्तर। भवनों के बहुमध्य भाग में वेदी, चार वन और तोरण द्वारादिकों से रमणीय ऐसे बाहल्य के तीसरे भागप्रमाण कूट होते हैं।।११।। **इन कूटों के उपरिम भाग पर विविध प्रकार के विन्यास से संयुक्त सुवर्ण, चांदी और रत्नमय जिनेन्द्रप्रासाद अर्थात् जिनमंदिर हैं।।१२।।**

व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं— किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, राक्षस, भूत, और पिशाच।।११।।

जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है वे व्यन्तर देव कहलाते हैं। यह सामान्य संज्ञा सार्थक है।

प्रश्न—कौन-कौन से देश में उनका निवास है ?

उत्तर—इस जम्बूद्वीप के असंख्यात द्वीपों और समुद्रों को लाँघकर प्रथम भूमि के खर पृथिवी भाग में किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच ये सात प्रकार के व्यन्तर रहते हैं तथा खर भाग के समान ही पङ्कबहुल भाग में राक्षसों का निवास है । इन किन्नर आदि शब्दों में द्वन्द्व समास है। यह किन्नर आदि आठ प्रकार के व्यन्तरों की विशेष संज्ञा जाननी चाहिये । यह संज्ञा देवगति नामकर्म के उदय से होती है ।

१. तत्त्वार्थवृत्ति पृ.-३३७-३३८।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

विंणरविंपुरुसादियवेंतरदेवाण अट्ठभेयाणं।
तिवियप्पणिलयपुरदो चेत्तदुमा होंति एक्केक्का।।२७।।

कमसो असोयचंपयणागडुमतुंबुरू य णग्गोहे।
कंटयरुक्खो तुलसी कदंब विदओ त्ति ते अट्ठं।।२८।।

ते सव्वे चेत्ततरू भावणसुरचेतरुक्खसारिच्छा।
जीउप्पत्तिलयाणं हेऊ पुढवीसरूवा य।।२९।।

मूलम्मि चउदिसासुं चेत्ततरूणं जिणिंदपडिमाओ।
चत्तारो चत्तारो चउतोरणसोहमाणाओ।।३०।।

पल्लंकआसणाओ सपाडिहेराओ रयणमइयाओ।
दंसणमेत्तणिवारिददुरिताओ देंतु वो मोक्खं।।३१।।

संखेज्जजोयणाणिं संखेज्जाऊ य एक्कसमयेणं।
जादि असंखेज्जाणिं ताणि असंखेज्जआऊ य।।९७।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

किन्नर-किम्पुरुषादिक आठ प्रकार के व्यन्तर देवों संबंधी तीनों प्रकार के (भवन, भवनपुर, आवास) भवनों के सामने एक-एक चैत्यवृक्ष है।।२७।।

अशोक, चम्पक, नागद्रुम, तुम्बरु, न्यग्रोध (वट), कण्टकवृक्ष, तुलसी और कदम्ब वृक्ष, इस प्रकार क्रम से वे चैत्यवृक्ष आठ प्रकार के हैं।।२८।।

ये सब चैत्यवृक्ष भवनवासी देवों के चैत्यवृक्षों के सदृश जीवों की उत्पत्ति व विनाश के कारण और पृथिवीस्वरूप हैं।।२९।।

चैत्यवृक्षों के मूल में चारों ओर चार तोरणों से शोभायमान चार-चार जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान हैं।।३०।।

पल्यंक आसन से स्थित, प्रातिहार्यों से सहित और दर्शनमात्र से ही पाप को दूर करने वाली वे रत्नमयी जिनेन्द्रप्रतिमायें आप लोगों को मोक्ष प्रदान करें।।३१।।

संख्यात वर्ष प्रमाण आयु से युक्त व्यंतर देव एक समय में संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयु से युक्त वह असंख्यात योजन जाता है।।९७।।

अट्ठाण वि पत्तेक्कं किंणरपहुदीण वेंतरसुराणं।
उच्छेहो णादव्वो दसकोदंडप्पमाणेणं।।९८।।

चउलक्खाधियतेवीसकोडिअंगुलयसूइवग्गेहिं।
भजिदाए सेढीए वग्गे भोमाण परिमाणं।।९९।।

४। ५३०८४१६०००००००००।
संखातीदविभत्ते विंतरवासम्मि लद्धपरिमाणा।
उप्पज्जंता देवा मरमाणा होंति तम्मत्ता।।१००।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

(सिद्धान्तसार दीपक से)

अशोकचम्पको नागस्तुम्बुरुश्च वटद्रुमः।
बदरी तुलसी वृक्षः कदम्बोऽष्टांह्रिपा इमे[1]।।५७।।

मणिपीठाग्रभागस्थाः पृथ्वीसारमयोन्नताः।
भवनेषु क्रमात्सन्ति ह्यष्टानां व्यन्तरात्मनाम्।।५८।।

किन्नर प्रभृति आठों व्यंतर देवों में से प्रत्येक की ऊंचाई दश धनुषप्रमाण जानना चाहिये ।।९८।। तेईस करोड़ चार लाख सूच्यंगुलों के वर्ग का (अर्थात् तीन सौ योजन वर्ग का) जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना व्यन्तर देवों का प्रमाण है असंख्यातों हैं ।।९९।। व्यन्तरों के असंख्यात का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने देव उत्पन्न होते हैं और उतने ही मरते हैं ।।१००।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

(सिद्धान्तसार दीपक से)

अब पिशाचादि व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्षों के भिन्न-भिन्न नाम, उनमें स्थित प्रतिबिम्ब एवं मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं—

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इन आठों व्यन्तर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (केसर), तुम्बरु, वट, वदरी, तुलसी और कदम्ब नाम वाले चैत्यवृक्ष होते हैं। ये ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पृथ्वी के सारमय (पृथ्वीकायिक) और मणिपीठ के अग्रभाग पर स्थित होते हैं।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक, अधिकार-१३, पृ. ४६३ से ४६४ तक।

तेषां मूले चतुर्दिक्षु चतस्रःप्रतिमाः पृथक्।
चतुस्तोरणसंयुक्ता दीप्ता दिव्या जिनेशिनाम्।।५९।।
मानस्तम्भोऽस्ति चैकैकः एकैकां प्रतिमां प्रति।
मुक्तास्रग्मणिघण्टाढ्यस्त्रिपीठशालभूषितः।।६०।।

देवों के नगर के बाहर वन-उद्यान में चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमायें

पुराणां च चतुर्दिक्षु त्यक्त्वा द्वे च सहस्रके।
योजनानां हि चत्वारि वनानि शाश्वतान्यपि।।६१।।
लक्ष्योजनदीर्घाणि लक्षार्धविस्तृतानि वै।
अशोकसप्तपर्णाम्र-चम्पकाढ्यानि सन्ति च।।६२।।
मध्येऽमीषां हि चत्वारो राजन्ते चैत्यपादपाः।
अशोक-सप्तपर्णाम्र-चम्पकाख्या जिनार्चनैः।।६३।।
विदिक्षु नगराणां स्युर्गणिकानां पुराणि च।
सहस्रचतुरशीतियोजनैर्विस्तृतानि वै।।६४।।
वृत्ताकाराणि नित्यानि प्राकारादियुतान्यपि।
पुराणि शेष भौमानामनेकद्वीपवार्धिषु।।६५।।

इन **वृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में जिनेन्द्र भगवान की चार-चार तोरण द्वार सहित, देदीप्यमान और दिव्य पृथक्-पृथक् चार प्रतिमाएँ हैं** तथा एक-एक प्रतिमा के प्रति मुक्ता एवं मणिमय घण्टाओं से युक्त, मणिमय तीन-तीन पीठ और प्राकार से युक्त एक-एक मानस्तम्भ हैं।।५७-६०।।

देवों के नगर के बाहर वन-उद्यान में चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमायें

अब नगरों की चारों दिशाओं में स्थित वनों एवं विदिशाओं में स्थित नगर का कथन करते हैं—

अर्थ—नगरों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, आम्र, चम्पक नाम के चार-चार शाश्वत वन हैं, जो एक-एक लाख योजन लम्बे तथा पचास-पचास योजन चौड़े हैं। इन वनों के मध्य में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाओं से **युक्त अशोक, सप्तच्छद चम्पक और आम्र नाम के चार-चार चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं**।।६१-६३।। नगरों की चारों विदिशाओं में प्रधान देवियों के वलयाकार, शाश्वत और प्राकार आदि से युक्त नगर हैं, जो ८४००० लम्बे और ८४००० योजन ही चौड़े हैं। शेष व्यन्तर देवों के नगर अनेक द्वीपों एवं अनेक समुद्रों में हैं।।६४-६५।।

व्यंतरदेवों के चैत्यवृक्ष

(लोकविभाग से)

तेसिं असोयचंपयणागा तुंबुरु वडो य कंटतरू।
तुलसी कडंबणामा चेत्ततरू होंति हु कमेण[1]।।७।।
कदम्बस्तु पिशाचानां राक्षसाः कण्टकद्रुमाः।
भूतानां तुलसीचैत्यं यक्षाणां च वटो भवेत्।।५५।।
किंनराणामशोकः स्वार्त्किपुरुषेषु च चम्पकः।
महोरगाणां नागोऽपि गन्धर्वाणां च तुम्बरुः।।५६।।
पृथिवीपरिणामास्ते आयागनियुतद्रुमाः।
जम्बूमानार्धमानाश्च कीर्तितास्ते प्रमाणतः।।५७।।
दिव्यरत्नविचित्रं च छत्रत्रितयमेकशः।
शुभध्वजपताकास्ते विभान्त्यायागमाश्रिताः।।५८।।
तोरणानि च चत्वारि नानारत्नमयानि च।
आसक्तमाल्यधामानि चैत्यानां हि चतुर्दिशम्।।५९।।
प्रत्येकं च चतस्रोऽर्चाः सौवर्ण्योऽत्र चतुर्दिशम्।
भूमिजानां यथा वृक्षाः तथा वानान्तरद्रुमाः।।६०।।

व्यंतरदेवों के चैत्यवृक्ष

(लोकविभाग से)

व्यंतर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (नागकेसर), तुंबरु, वट, कण्टतरु, तुलसी और कदम्ब; इन नामों वाले चैत्यवृक्ष होते हैं।।७।। चैत्यवृक्ष पिशाचों का कदम्ब, राक्षसों का कण्टकद्रुम, भूतों का तुलसी, यक्षों का वट, किन्नरों का अशोक, किंपुरुषों का चम्पक, महोरगों का नाग (नागकेसर) और गन्धर्वों का तुंबरु होता है।।५५-५६।। आयाग पर नियत वे चैत्यवृक्ष पृथिवी के परिणामस्वरूप होते हुए प्रमाण में जम्बूवृक्ष के प्रमाण के अर्ध प्रमाण वाले कहे गऐ हैं।।५७।। उनमें से प्रत्येक के दिव्य रत्नों से विचित्र तीन छत्र होते हैं। आयाग के आश्रित वे वृक्ष उत्तम ध्वजा पताकाओं से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं।।५८।। चैत्यवृक्षों की चारों दिशाओं में मालाओं के तेज से सहित अनेक रत्नमय चार तोरण होते हैं।।५९।। प्रत्येक वृक्ष की चारों दिशाओं में **चार-चार सुवर्णमय जिनप्रतिमाएँ स्थित होती** हैं। ये वृक्ष जैसे भूमिजों (भवनवासियों) के होते हैं वैसे ही वे व्यन्तरों के भी होते हैं।।६०।।

---

१. लोकविभाग अधिकार-९, पृ. १७०।

मध्यलोक में चैत्यवृक्ष

जम्बूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

पायारपरिगदाइं वरगोउरदारतोरणाइं पि।
अब्भंतरम्मि भागे महोरगाणं च चेट्ठंति।।२५।।

पाठान्तरम्।

णयरेसुं रमणिज्जा पासादा होंति विविहविण्णासा।
अब्भंतरचेत्तरया णाणावररयणणियरमया।।२६।।

दिप्पंतरयणदीवा समंतदो विविहधूवधडजुत्ता।
वज्जमयवरकवाडा वेदीगोउरदुवारजुदा।।२७।।

पणुहत्तरि चावाणिं उत्तुंगा सयधणूणि दीहजुदा।
पण्णासदंडरुंदा होंति जहण्णम्मि पासादा।।२८।।

७५। १००। ५०।

पासादावारेसुं बारस चावाणि होंति उच्छेहो।
पत्तेक्कं छण्णाहं अवगाढं तं पि चत्तारि।।२९।।

१२। ६। ४।

मध्यलोक में चैत्यवृक्ष

जम्बूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

वेदी के अभ्यन्तर भाग में प्राकार से वेष्टित एवं उत्तम गोपुरद्वार व तोरणों से संयुक्त ऐसे महोरग देवों के (भवन) स्थित हैं।।२५।। पाठान्तर। नगरों में विविध प्रकार की रचनाओं से युक्त, अनेक उत्तमोत्तम रत्नसमूहों से निर्मित, अभ्यन्तरभाग में **चैत्य तरुओं से सहित**, चारों ओर प्रदीप्त रत्नदीपकों से सुशोभित, विविध प्रकार के धूपघटों से युक्त, वज्रमय कपाटों से संयुक्त और वेदी व गोपुरद्वारों से सहित रमणीय प्रासाद हैं।।२६-२७।। ये प्रासाद जघन्यरूप से पचहत्तर धनुष ऊँचे, सौ धनुष लंबे और पचास धनुषप्रमाण विस्तारयुक्त हैं।।२८।। ऊँचाई ७५; लंबाई १००; विस्तार ५० धनुष। इन प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक की ऊँचाई बारह धनुष, व्यास छह धनुष और अवगाढ़ चार धनुषप्रमाण है।।२९।।

पणुवीसं दोण्णि सया उच्छेहो होदि जिट्ठपासादा।
दीहं तिसयधणूणिं पत्तेक्कं सद्ध विक्खंभो।।३०।।

२२५। ३००। १५०।

ताण दुवारुच्छेहो दंडा छत्तीस होदि पत्तेक्कं।
अट्ठारस विक्खंभो बारस णियमेण अवगाढं[1]।।३१।।

दं. ३६। १८। १२।

अकृत्रिम जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ

(पांडुकवन के जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष)

पीढस्स चउदिसासुं बारसवेदीओ होंति भूमियले।
वरगोउराओ तेत्तियमेत्ताओ पीढउड्ढम्मि[2]।।१९०३।।

पीढस्सुवरिमभागे सोलसगव्वूदिमेत्तउच्छेहो।
सिद्धंतो णामेणं चेत्तदुमो दिव्ववरतेओ ।।१९०४।।

को १६ ।

ऊँचाई १२; व्यास ६; अवगाढ़ ४ धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों में प्रत्येक की ऊँचाई दो सौ पच्चीस धनुष, लम्बाई तीन सौ धनुष और विष्कंभ इससे आधा अर्थात् एक सौ पचास धनुषप्रमाण है।।३०।। ऊँचाई २२५; लम्बाई ३००; वि. १५० धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक द्वार की ऊँचाई छत्तीस धनुष, विष्कंभ अठारह धनुष और अवगाढ़ नियम से बारह धनुष प्रमाण है।।३१।। ऊँचाई ३६; वि. १८, अव. १२ धनुष।

भावार्थ—चैत्यवृक्ष का अर्थ है कि जिनवृक्षों की कटनी पर चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमाएँ हैं उन्हें ही चैत्यतरु-चैत्यवृक्ष कहते हैं।

अकृत्रिम जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ

(पांडुकवन के जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष)

पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियां भूमितल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं।।१९०३।। पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊंचा दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला सिद्धार्थ नामक चैत्यवृक्ष है ।। १९०४ ।। को. १६ ।

---

१. तिलोयपण्णत्ती, चतुर्थमहाधिकार, पृ. १४५। २. तिलोयपण्णत्ती पृ. ३९० से ३९३ तक।

खंधुच्छेहो कोसा चत्तारो बहलमेक्कगव्वूदी।
बारसकोसा साहादीहत्तं चेय विच्चालं।।१९०५।।
को ४ । १ । १२ । १२ ।
इगिलक्खं चालीसं सहस्सया इगिसयं च वीसजुदं।
तस्स परिवाररुक्खा पीढोवरि तप्पमाणधरा।।१९०६।।
१४०१२० ।
विविहवररयणसाहा मरगयपत्ता य पउमरायफला।
चामीयररजदमयाकुसुमजुदा सयलकालं ते।।१९०७।।
सव्वे अणाइणिहणा पुढविमया दिव्वचेत्तवररूक्खा।
जीवुप्पत्तिलयाणं कारणभूदा सइं भवंति।।१९०८।।
रुक्खाण चउदिसासुं पत्तेक्कं विविहरयणरइदाओ।
जिणसिद्धप्पडिमाओ जयंतु चत्तारि चत्तारि।।१९०९।।
चेत्ततरूणं पुरदो दिव्वं पीढं हवेदि कणयमयं।
उच्छेहदीहवासा तस्स य उच्छण्णउवएसा।।१९१०।।
पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदी य होंति भूमियले।
चरिअट्टालयगोउरदुवारतोरणविचित्ताओ ।।१९११।।

चैत्यवृक्ष के स्कन्ध की ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस और शाखाओं की लम्बाई व अन्तराल बारह कोस प्रमाण है।।१९०५।। को. ४ । १। १२। १२। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को धारण करने वाले **एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस इसके परिवार वृक्ष हैं।**।१९०६।। १४०१२०। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित शाखाओं, मरकतमणिमय पत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित पुष्पों से सदैव संयुक्त रहते हैं।।१९०७।।

ये सब उत्तम दिव्य चैत्यवृक्ष अनादिनिधन और पृथ्वीरूप होते हुए जीवों की उत्पत्ति और विनाश के स्वयं कारण होते हैं ।। १९०८ ।। **इन वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से रचित चार-चार जिन और सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान हैं।** ये प्रतिमायें जयवन्त होवें ।। १९०९ ।।

चैत्यवृक्षों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। इसकी ऊँचाई, लम्बाई और विस्तारादिक का उपदेश नष्ट हो गया है ।।१९१०।। पीठ के चारों ओर भूमितल पर मार्ग व अट्टालिकाओं, गोपुरद्वारों और तोरणों से विचित्र बारह वेदियां हैं।।१९११।।

चउजोयणउच्छेहा उवरिं पीढस्स कणयवरखंभा।
विविहमणिगणियरखचिदा चामरघंटापयारजुदा।।१९१२।।
सव्वेसुं थंभेसुं महाधया विविहवण्णरमणिज्जा।
णामेण महिंदधया छत्तत्तयसिहरसोहिल्ला।।१९१३।।
पुरदो महाधयाणं मकरप्पमुहेहिं मुक्कसलिलाओ।
चत्तारो वावीओ कमलुप्पलकुमुदछण्णाओ।।१९१४।।
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता।
दस कोसा अवगाढा वावीओ वेदियादिजुत्ताओ।।१९१५।।
को ५० । १०० । गा १० ।
वावीणं बहुमज्झे चेट्ठदि एक्को जिणिंदपासादो।
विप्फुरिदरयणकिरणो किं बहुसो सो णिरुवमाणो।।१९१६।।
तत्तो दहाउ पुरदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसुं।
पासादा रयणमया देवाणं कीडणा होंति।।१९१७।।
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता।
धूवधडेहिं जुत्ता ते णिलया विविहवण्णधरा।।१९१८।।
को ५० । २५ । २५ ।

पीठ के ऊपर विविध प्रकार के मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घंटाओं से युक्त चार योजन ऊँचे सुवर्णमय खम्भे हैं।।१९१२।। सब खम्भों के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखर पर तीन छत्रों से सुशोभित महेन्द्र नामक महाध्वजायें हैं।।१९१३।। महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजन्तुओं से रहित जल वाली और कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकायें हैं।।१९१४।। वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त, इससे दुगुणी अर्थात् सौ कोस लम्बी और दश कोस गहरी हैं।।१९१५।। को. ५० । १०० । ग. १०। **वापियों के बहुमध्य भाग में प्रकाशमान रत्नकिरणों से सहित एक जिनेन्द्रप्रासाद स्थित** है। बहुत कथन से क्या, वह जिनेन्द्रप्रासाद (जिनमंदिर) निरूपम है।।१९१६।। अनन्तर वापियों के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के रत्नमय क्रीडाभवन हैं।।१९१७।। विविध वर्णों को धारण करने वाले वे भवन पचास कोस ऊँचे, क्रम से पच्चीस कोस विस्तृत और पच्चीस ही कोस लम्बे तथा धूपघटों से संयुक्त हैं।।१९१८।। को. ५० । २५ । २५।

वरवेदियाहिं रम्मा वरकंचणतोरणेहिं परियरिया।
वरवज्जणीलमरगयणिम्मिदभित्तीहिं सोहंते।।१९१९।।

ताण भवणाण पुरदो तेत्तियमाणेण दोण्णि पासादा।
धुव्वंतधयवदाया पुरंतवररयणकिरणोहा।।१९२०।।
५० । २५ । २५ ।

तत्तो विचित्तरूवा पासादा दिव्वरयणणिम्मविदा।
कोससयमेत्तउदया कमेण पण्णासदीहवित्थिण्णा।।१९२१।।

जे जेट्ठदारपुरदो दिव्वमुहमंडवादि कहिदा य।
ते खुल्लयदारेसुं हवंति अद्धप्पमाणेहि ।।१९२२।।

तत्तो परदो वेदी एदाणिं वेढिदूण सव्वाणिं।
चेट्ठदि चरिअट्टालयगोउरदोरहिं कणयमई।।१९२३।।

तीए परदो वरिया तुंगेहिं कणयरयणथंभेहिं।
चेट्ठंति चउदिसासुं दसप्पयारा धयणिबंधा।।१९२४।।

हरिकरिवसहखगाहिवसिहिससिरविहंसकमलचक्कधया।
अट्ठुत्तरसयसंखा पत्तेक्कं तेत्तिया खुल्ला।।१९२५।।

उत्तम वेदिकाओं से रमणीय और उत्तम सुवर्णमय तोरणों से युक्त वे भवन उत्कृष्ट वज्र, नीलमणि और मरकत मणियों से निर्मित भित्तियों से शोभायमान हैं।।१९१९।। उन भवनों के आगे इतने ही प्रमाण से संयुक्त फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और प्रकाशमान उत्तम रत्नों के किरणसमूह से सुशोभित दो प्रासाद हैं।।१९२०।। ५० ।। २५ । २५ ।

इसके आगे सौ कोस ऊंचे और क्रम से पचास कोस लम्बे-चौड़े दिव्य रत्नों से निर्मित विचित्र रूप वाले प्रासाद हैं।।१९२१।। ज्येष्ठ द्वार के आगे जो दिव्य मुखमण्डपादिक कहे जा चुके हैं, वे आधे प्रमाण से सहित क्षुद्र द्वारों में भी हैं।।१९२२।। इसके आगे मार्ग, अट्टालिकाओं और गोपुरद्वारों से सहित सुवर्णमयी वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है।।१९२३।। इस वेदी के आगे चारों दिशाओं में सुवर्ण एवं रत्नमय उन्नत खम्भों से सहित दश प्रकार की श्रेष्ठ ध्वजपंक्तियाँ स्थित हैं ।।१९२४।। **सिंह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र, इन चिह्नों से युक्त ध्वजाओं में से प्रत्येक एक सौ आठ और इतनी ही क्षुद्रध्वजायें हैं** ।।१९२५।।

चामीयरवरवेदी एदाणिं वेढिदूण चेट्ठेदि।
विप्फुरिदरयणकिरणा चउगोउरदाररमणिज्जा।।१९२६।।

बे कोसाणिं तुंगा वित्थारेणं धणूणि पंचसया।
विप्फुरिदधयवदाया फडिहमयाणेयवरभित्ती।।१९२७।।
को २ । दं ५०० ।

तीए परदो दसविहकप्पतरू ते समंतदो होंति।
जिणभवणेसुं तिहुवणविम्हयजणणेहिं रूवेहिं।।१९२८।।

गोमेदयमयखंधा कंचणमयकुसुमणियररमणिज्जा।
मरगयमयपत्तधरा विद्दुमवेरुलियपउमरायफला।।१९२९।।

सव्वे अणाइणिहणा अकट्टिमा कप्पपायवपयारा।
मूलेसु चउदिसासुं चत्तारि जिणिंदपडिमाओ।।१९३०।।

तप्फलिहवीहिमज्झे वेरुलियमयाणि माणथंभाणिं।
वीहिं पडि पत्तेयं विचित्तरूवाणि रेहंति।।१९३१।।

चामरघंटाकिंकिणिकेतणपहुदीहिं उवरि संजुत्ता।
सोहंति माणथंभा चउवेदीदारतोरणेहिं जुदा।।१९३२।।

प्रकाशमान रत्नकिरणों से संयुक्त और चार गोपुरद्वारों से रमणीय सुवर्णमय उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है।।१९२६।। यह वेदी दो कोस ऊँची, पांच सौ धनुष चौड़ी, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और स्फटिक मणिमय अनेक उत्तम भित्तियों से संयुक्त है।।१९२७।। को. २ । द. ५००।

इसके आगे जिनभवनों में चारों ओर तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले स्वरूप से संयुक्त वे दश प्रकार के **कल्पवृक्ष** हैं।।१९२८।। सब प्रकार के कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कन्ध से सहित, सुवर्णमय कुसुमसमूह से रमणीय, मरकतमणिमय पत्तों को धारण करने वाले, मूंगा, नीलमणि एवं पद्मरागमणिमय फलों से संयुक्त, अकृत्रिम और अनादिनिधन हैं। **इनके मूल में चारों ओर चार जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान** हैं।। १९२९-१९३०।। उन स्फटिक मणिमय वीथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी के प्रति विचित्र रूप वाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं।।१९३१।। चार वेदीद्वार और तोरणों से युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घंटा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं।।१९३२।।

ताणं मूले उवरिं जिणिंदपडिमाओ चउदिसंतेसुं।
वररयणणिम्मिदाओ जयंतु जयथुणिदचरिदाओ।।१९३३।।

कप्पमहिं परिवेढिय साला वररयणणियरणिम्मविदा।
चेट्ठदि चरियट्टालयणाणाविहधयवडाडोवा।१९३४।।

चूलियदक्खिणभाए पच्छिमभायम्मि उत्तरविभागे।
एक्केक्कं जिणभवणं पुव्वम्हि व वण्णणेहिं जुदं।।१९३५।।

एवं संखेवेणं पंडुगवणवण्णणाओ भणिदाओ।
वित्थारवण्णणेसुं सक्को वि ण सक्कदे तस्स।।१९३६।।

पंडुगवणस्स हेट्ठे छत्तीससहस्सजोयणा गंतुं।
सोमणसं णाम वणं मेरुं परिवेढिदूण चेट्ठेदे।।१९३७।।
३६०००।

पणसयजोयणरुंदं चामीयरवेदियाहिं परियरियं।
चउगोउरसंजुत्तं खुल्लयदारेहिं रमणिज्जं।।१९३८।।

चत्तारि सहस्साणिं बाहत्तरिजुत्तदुसयजोयणया।
एक्करसहिदट्ठकला विक्खंभो बाहिरो तस्स।।१९३९।।
४२७२। ८।
११

इन मानस्तम्भों के नीचे और ऊपर चारों दिशाओं में विराजमान, उत्तम रत्नों से निर्मित और जग से कीर्तित चरित्र से संयुक्त जिनेन्द्रप्रतिमाएँ जयवन्त होवें।।१९३३।। मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, नाना प्रकार की ध्वजापताकाओं के आटोप से सुशोभित और श्रेष्ठ रत्नसमूह से निर्मित कोट इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है।।१९३४।। चूलिका के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भाग में भी **पूर्वदिशावर्ती जिनभवन के समान वर्णनों से संयुक्त एक-एक जिनभवन** है उपर्युक्त वर्णन पांडुकवन के जिनमंदिर का है।।१९३५।। इस प्रकार यहां संक्षेप से पाण्डुकवन का वर्णन किया गया है । उसका विस्तार से वर्णन करने के लिये तो इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकता है।।१९३६।। पाण्डुकवन के नीचे छत्तीस हजार योजन जाकर सौमनस नामक वन मेरु को वेष्टित करके स्थित है।।१९३७।। ३६०००। यह सौमनस वन पाँच सौ योजनप्रमाण विस्तार से सहित, सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित, चार गोपुरों से संयुक्त और क्षुद्रद्वारों से रमणीय है।।१९३८।। उसका बाह्यविस्तार चार हजार दो सौ बहत्तर योजन और ग्यारह से भाजित आठ कलाप्रमाण है।।१९३९।। ४२७२-८/११।

अकृत्रिम जिनमन्दिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष-सिद्धार्थ वृक्ष एवं ध्वजाएँ
(स्तूप व चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें हैं)
(जंबूदीवपण्णत्ती से[१])

ताणं सभाधराणं पुरदो थूहाणि होंति रम्माणि।
जिणवरपडिमच्छण्णा णाणामणिरयणपरिणामा।।४१।।

रयणमयविउलपीढं उत्तुंगं जोयणाणि चालीसं।
थूहस्स दु चउवीसावंचणवेदीसमाजुत्तं।।४२।।

पीढस्सुवरि विचित्तं तिमेहलापरिउडं महाथूहं।
आयामं विक्खंभं उच्छेहं होइ चउसट्ठी।।४३।।

थूहादो पुव्वदिसं गंतूणं होइ कणयमयपीढं।
विक्खंभायामेण य सहस्स तह जोयणाणेया।।४४।।

वारसवेदिसमग्गं वरतोरणमंडियं परमरम्मं।
मणिगणजलंतणिवहं बहुतरुगणसंकुलं दिव्वं।।४५।।

तस्स दु पीढस्सुवरिं सोलस तह जोयणा समुत्तुंगा।
चेदियरुक्खा णेया णाणामणिरयणपरिणामा।।४६।।

अकृत्रिम जिनमन्दिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष-सिद्धार्थ वृक्ष एवं ध्वजाएँ
(स्तूप व चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें हैं)
(जम्बूदीवपण्णत्ती से)

उन सभागृहों के आगे जिनेन्द्रप्रतिमाओं से युक्त नाना मणि एवं रत्नों के परिणामरूप रमणीय स्तूप होते हैं।।४१।। स्तूप का रत्नमय विशाल पीठ चौबीस सुवर्णमय वेदियों से संयुक्त तथा चालीस योजन ऊँचा होता है।।४२।। पीठ के ऊपर तीन मेखलाओं से वेष्टित महास्तूप होता है। इसका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेध चौंसठ योजन प्रमाण होता है।।४३।।स्तूप से आगे पूर्व दिशा में जाकर एक हजार योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित सुवर्णमय पीठ जानना चाहिये।।४४।। यह दिव्य पीठ बारह वेदियों से परिपूर्ण, उत्तम तोरणों से मण्डित, अतिशय रमणीय, देदीप्यमान मणिगणों के समूहों से युक्त और बहुत से तरुगणों से व्याप्त होता है।।४५।। उस पीठ के ऊपर स्थित सोलह ऊँचे नाना **मणियों एवं रत्नों के परिणामरूप चैत्यवृक्ष** जानना चाहिये।।४६।।

---

१. जम्बूदीवपण्णत्ती पृ. ९१ से ९३ तक।

एगं च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्स परिसंखा।
एगसयं वीसहिया सिद्धत्थतरूण परिसंखा।।४७।।

उड्ढं गंतूण पुणो धरणीदो जोयणाणि चत्तारि।
चदुसु वि दिसाविभागे साहाओ होंति णिद्दिट्ठा।।४८।।

बारहजोयण दीहा सिद्धत्थयणामधेयरुक्खाणं।
विक्खंभेण य जोयण णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं।।४९।।

अट्ठेव जोयणेसु य रुंदेसु महादुमेसु णिद्दिट्ठा।
जिणइंदाणं पडिमा अकिट्टिमा सासयसभावा।।५०।।

पलियंकासणबद्धा रयणमया पाडिहेरसंजुत्ता।
सव्वाणं रुक्खाणं चदुसु वि भागेसु ते होंति।।५१।।

तत्तो दुमसंडादो गंतूण पुणो वि पुव्वदिसभागे।
धयणिवहाणं पीढं वारसवेदीहिं संजुत्तं।।५२।।

तम्मि वरपीढसिहरे सोलस तह जोजणा समुत्तुंगा।
कोसेग होंति रुंदा वेरुलियमया महाखंभा।।५३।।

खंभेसु होंति दिव्वा महाधया विविहवण्णसंजुत्ता।
छत्तत्तयवरसिहरा अणोवमा रूवसंपण्णा।।५४।।

धयणिवहाणं पुरदो वावीओ होंति सलिलपुण्णाओ।
सययोजणदीहाओ पण्णासाओ य रुंदाओ।।५५।।

सिद्धार्थ वृक्षों की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है।।४७।।पृथिवी से चार योजन ऊपर जाकर चारों ही दिशा विभागों में उनकी शाखायें निर्दिष्ट की गई हैं।।४८।। सर्वदर्शियों द्वारा सिद्धार्थ नामक वृक्षों की (शाखाएँ) बारह योजन दीर्घ और एक योजन विष्कम्भ से युक्त निर्दिष्ट की गई हैं।।४९।। आठ योजन रुंद वाले **उन महाद्रुमों पर अकृत्रिम और शाश्वतिक स्वभाव वाली जिनेन्द्रों की प्रतिमाएँ** निर्दिष्ट की गई हैं।।५०।। पल्यंकासन से विराजमान और प्रातिहार्यों से संयुक्त वे **रत्नमय जिनप्रतिमायें** सब वृक्षों के चारों ही भागों में होती हैं।।५१।।उस वृक्षसमूह से पुनः पूर्व दिशाभाग में जाकर बारह वेदियों से संयुक्त ध्वजासमूहों का पीठ होता है ।।५२।। उस उत्तम पीठ के शिखर पर सोलह योजन ऊँचे और एक कोश विस्तार वाले वैडूर्यमणिमय विशाल खम्भ होते हैं।।५३।।खम्भा पर विविध वर्णों से संयुक्त, शिखर पर उत्तम तीन छत्रों से सुशोभित और अनुपम रूप से सम्पन्न दिव्य महाध्वजायें होती हैं।।५४।। ध्वजासमूहों के आगे सौ योजन दीर्घ, पचास योजन विस्तृत, दश योजन गहरी, सुवर्ण एवं मणिमय वेदिकाओं से युक्त, मणिमय तोरण

दसजोजणउंडाओ कंचणमणिवेदिएहि जुत्ताओ।
मणितोरणणिवहाओ कमलुप्पलकुसुमछण्णाओ।।५६।।

एवं पुव्वदिसाए जिणभवणं मंदरस्स णिद्दिट्ठं।
अवसेसाण दिसाणं एमेव कमो मुणेयव्वो।।५७।।

तत्तो दहादु परदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसु।
पासादा णायव्वा देवाणं कीडणा होंति।।५८।।

कणयमया पासादा पण्णासा जोयणा समुत्तुंगा।
विक्खंभायामेण य पणवीसा होंति णिद्दिट्ठा।।५९।।

कणयमया पासादा वेरुलियमया य मरगयमया य।
ससिकंतसूरकंताकक्केयणपुस्सरागमया ।।६०।।

वरवेदिएहिं जुत्ता कंचणमणिरयणजालपरियरियं।
अक्खइअणाइणिहणा को सक्कइ वण्णिउं सयलं।।६१।।

तेहिंतो गंतूणं पुव्वदिसाए पुणो वि णायव्वो।
वरतोरणं विचित्तं मणिकंचणरयणसंछण्णं।।६२।।

जोयणसयद्धतुंगं तदद्धवित्थार भासुरं दिव्वं।
मुत्तादामेणद्धं वरघंटाजालरमणीयं।।६३।।

तत्तो परं विचित्ता पासादा गोउराण पासेसु।
जोयणसयउव्विद्धा दो दो दु हवंति णायव्वा।।६४।।

समूह से संयुक्त, कमल व उत्पल कुसुमों से व्याप्त और जल से परिपूर्ण वापियां होती हैं ।। ५५-५६ ।। इस प्रकार मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में स्थित **जिनभवन** का स्वरूप निर्दिष्ट किया है । शेष दिशाओं के जिनभवनों का भी यही क्रम होना चाहिये।। ५७।। उस द्रह के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के क्रीडाप्रासाद हैं ।। ५८।। ये सुवर्णमय प्रासाद पचास योजन ऊंचे और पच्चीस योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित निर्दिष्ट किये गये हैं।।५९।। उक्त प्रासाद सुवर्ण, वैडूर्यमणि, मरकतमणि, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पुखराज मणियों से निर्मित, उत्तम वेदिकाओं से युक्त, सुवर्ण, मणि एवं रत्नों के समूह से व्याप्त, अक्षयी व अनादिनिधन हैं। उनका सम्पूर्ण वर्णन करने के लिये कौन समर्थ है ?।।६०-६१।। उनसे आगे फिर भी पूर्व दिशा में जाकर मणि, सुवर्ण, रत्नों से व्याप्त विचित्र उत्तम तोरण जानना चाहिये।।६२।।

यह तोरण पचास योजन ऊंचा, इससे आधे (२५ यो.) विस्तार से सहित, भासुर, दिव्य, मुक्तामाला से संयुक्त और उत्तम घंटा समूह से रमणीय है।।६३।। इसके आगे

तत्तो परं विचित्ता धयणिवहा विविहवण्णजादीया।
असिदी सहस्स संखा णिद्दिट्ठा होंति णायव्वा।।६५।।

तोरणसयसंजुत्ता वरवेदीपरिउडा समुत्तुंगा।
सायरतरंगभंगा सोहंति महाधया रम्मा।।६६।।

तत्तो परं वियाणह वणसंडं विविहपायवाइण्णं।
वणवेदिएहि जुत्तं णाणामणिरयणपरिणामं।।६७।।
रयणमयपीढसोहं मणितोरणमंडियं मणभिरामं।
कणयमयकुसुमसोहं मरगयवरपत्तसंछण्णं।।६८।।

चंपयअसोयगहणं सत्तच्छयअंबकप्पतरुणिवहं।
वेरुलियफलसमिद्धं विद्दुमसाहाउलसिरीयं।।६९।।

ताणं कप्पदुमाणं मूलेसु हवंति चदुसु वि दिसासु।
जिणइंदाणं पडिमा सपाडिहेरा विरायंति।।७०।।

सीद्दासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिसंजुत्ता।
पलियंकासणसंगद अणोवमा रूवसंठाणा।।७१।।

गोपुरों से पार्श्व भागों में सौ योजन ऊंचे दो-दो विचित्र प्रासाद जानना चाहिये।।६४।। इसके आगे विविध वर्ण व जाति के **एक हजार अस्सी** (१८० × १०) संख्या प्रमाण विचित्र **ध्वजाओं के समूह** निर्दिष्ट किये गये हैं।।६५।। सौ तोरणों से संयुक्त व उत्तम वेदी से वेष्टित वे ऊंची रमणीय महाध्वजायें समुद्र की तरंगों के भंग के समान शोभायमान होती हैं।।६६।। **इसके आगे विविध पादपों से व्याप्त, वनवेदिकाओं से युक्त, नाना मणियों व रत्नों के परिणामरूप, रत्नमय पीठ से सुशोभित, मणिमय तोरणों से मण्डित, मनोहर, सुवर्णमय कुसुमों से शोभित, मरकत मणिमय उत्तम पत्तों से व्याप्त, चंपक व अशोक वृक्षों से गहनः, सप्तच्छद व आम्र कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, वैडूर्यमय फलों से समृद्ध और मूंगामय शाखाओं की शोभा से संयुक्त वनखण्ड जानना चाहिये।।६७-६९।। उन कल्पवृक्षों के मूल भागों में चारों ही दिशाओं में प्रातिहार्य सहित जिनेन्द्रों की प्रतिमायें विराजमान हैं।।७०।।**

ये प्रतिमायें सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादि से संयुक्त, पल्यंकासन से स्थित और अनुपम रूप व संस्थान से युक्त हैं।।७१।।

नंदीश्वर द्वीप में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

णंदीसरबहुमज्झे पुव्वदिसाए हुवेदि सेलवरो।
अंजणगिरि त्ति खादो णिम्मलवरइंदणीलमओ।।५७।।

जोयणसहस्सगाढो चुलसीदिसहस्समेत्तउच्छेहो।
सव्वस्सिं चुलसीदीसहस्सरुंदो य समवट्टो।।५८।।

१०००। ८४००० । ८४०००।

मूलम्मि य उवरिम्मि य तडवेदीओ विचित्तवणसंडा।
वणवेदीओ तस्स य पुव्वोदिदवण्णणा होंति।।५९।।

चउसु दिसाभागेसुं चत्तारि दहा भवंति तग्गिरिणो।
पत्तेक्कमेक्कजोयणलक्खपमाणा य चउरस्सा।।६०।।

१०००००।

जोयणसहस्सगाढा टंकुक्किण्णा य जलयरविमुक्का।
फुल्लंतकमलकुवलयकुमुदवणामोदसोहिल्ला।।६१।।

१०००।

नंदीश्वर द्वीप में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

नंदीश्वरद्वीप के बहुमध्यभाग में पूर्व दिशा की ओर अंजनगिरि इस नाम से प्रसिद्ध निर्मल उत्तम इन्द्रनीलमणिमय श्रेष्ठ पर्वत है।।५७।। यह पर्वत एक हजार योजन गहरा, चौरासी हजार योजन ऊँचा और सब जगह चौरासी हजार योजनमात्र विस्तार से सहित समवृत्त है।।५८।। अवगाह १००० । उत्सेध ८४००० । विस्तार ८४०००।

उसके मूल व उपरिम भाग में तटवेदियां व विचित्र वनखण्ड स्थित हैं। उसकी वन-वेदियों का वर्णन पूर्वोक्त वेदियों के ही समान है।।५९।। उस पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में चौकोण चार द्रह है। इनमें से प्रत्येक एक लाख योजन विस्तार वाले एवं चतुष्कोण हैं।।६०।। विस्तार १००००० योजन। फूले हुए कमल, कुवलय और कुमुदवनों की सुगन्ध से शोभित ये द्रह एक हजार योजन गहरे, टंकोत्कीर्ण एवं जलचर जीवों से रहित हैं।।६१।। गहराई १००० योजन। नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा

णंदाणंदवदीओ णंदुत्तरणंदिघोसणामाओ।
एदाओ वावीओ पुव्वादिपदाहिणकमेणं।।६२।।
असोयवणं पढमं णं सत्तच्छदचंपयाण विउणाणिं।
चूदवणं पत्तेक्कं पुव्वादिदिसासु चत्तारि।।६३।।
जोयणलक्खायामा तदद्धवासा भवंति वणसंडा।
पत्तेक्कं चेत्तदुमा वणणामजुदा वि एदाणं।।६४।।
वावीणं बहुमज्झे दधिमुहणामा भवंति दधिवण्णा।
एक्केक्का वरगिरिणो पत्तेक्कं अयुदजोयणुच्छेहो।।६५।।

१००००।

तम्मेत्तवासजुत्ता सहस्सगाढम्मि वज्जसमवट्टा।
ताणोवरिमतडेसुं तडवेदीवरवणाणि विविहाणिं।।६६।।

१०००० । १०००।

वावीण बाहिरेसुं दोसुं कोणेसु दोण्णि पत्तेक्कं।
रतिकरणामा गिरिणो कणयमया दहिमुहसरिच्छा।।६७।।
जोयणसहस्सवासा तेत्तियमेत्तोदया य पत्तेक्कं।
अड्ढाइज्जसयाइं अवगाढा रतिकरा गिरिणो।।६८।।

१०००। १०००। २५०

नामक ये चार वापिकायें पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।।६२।।

पूर्वादिक चारों दिशाओं में से प्रत्येक में प्रथम अशोकवन, सप्तच्छद और चम्पक वन एवं आम्रवन ये चार वन हैं।।६३।। ये वनखण्ड एक लाख योजन लंबे और इससे आधे विस्तार से सहित है। इनमें से प्रत्येक वन में वनके नाम से संयुक्त चैत्यवृक्ष हैं।।६४।। वापियों के बहुमध्यभाग में दही के समान वर्णवाले एक एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई दश हजार योजन प्रमाण है।।६५।।१००००।

उतनेमात्र (दश हजार योजन) विस्तार से सहित उक्त पर्वत एक हजार योजन गहराई में वज्रमय व गोल हैं। इनके उपरिम तटों पर तटवेदियाँ और विविध प्रकार के वन हैं।।६६।। व्यास १००००। अवगहा १०००।

वापियों के दोनों बाह्य कोनों में से प्रत्येक में दधिमुखों के सदृश सुवर्णमय रतिकर नामक दो पर्वत हैं।।६७।। प्रत्येक रतिकर पर्वत का विस्तार एक हजार योजन, इतनी ही ऊँचाई और अढ़ाई सौ योजन प्रमाण अवगाह है।।६८।।

व्यास १०००। उदय १०००। अवगाह २५०।

ते चउचउकोणेसुं एक्केक्कदहस्स होंति चत्तारि।
लोयविणिच्छियकत्ता एवं णियमा परूवेंति।।६९।।

पाठान्तरम्।

एक्कचउक्कट्ठंजणदहिमुहरइयरगिरीण सिहरम्मि।
चेट्ठदि वररयणमओ एक्केक्कजिणिंदपासादो।।७०।।
जं भद्दसालवणजिणपुराण उस्सेहपहुदि उवइट्ठं।
तेरसजिणभवणाणं तं एदाणं पि वत्तव्वं।।७१।।
जलगंधकुसुमतंदुलवरचरुफलदीवधूवपहुदीणं।
अच्चंते थुणमाणा जिणिंदपडिमाणि देवाणं।।७२।।
जोइसियवाणवेंतरभावणसुरकप्पवासिदेवीओ।
णच्चंति य गायंति य जिणभवणेसुं विचित्तभंगेहिं।।७३।।
भेरीमद्दलघंटापहुदीणिं विविहदिव्ववज्जाणिं।
वायंते देववरा जिणवरभवणेसु भत्तीए।।७४।।
एवं दक्खिणपच्छिमउत्तरभागेसु होंति दिव्वदहा।
णवरि विसेसो णामा पउमिणिसंडाण अण्णण्णा।।७५।।

वे रतिकर पर्वत प्रत्येक द्रह के चार चार कोनों में चार होते हैं, इस प्रकार लोकविनिश्चयकर्ता नियम से निरूपण करते हैं।।६९।। पाठान्तर।

एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर पर्वतों के शिखर पर उत्तम रत्नमय एक एक जिनेन्द्र मन्दिर स्थित है।।७०।।

भद्रशालवन के जिनपुरों की जो ऊँचाई आदि बतलाई है, वही इन तेरह जिनभवनों की भी कहना चाहिये।।७१।।

इन मन्दिरों में देव, जल, गन्ध, पुष्प, तंदुल, उत्तम नैवेद्य, फल, दीप और धूपादिक द्रव्यों से जिनेन्द्रप्रतिमाओं की स्तुतिपूर्वक पूजा करते हैं।।७२।।

ज्योतिषी, वानव्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देवों की देवियाँ इन जिनभवनों में विचित्र रीति से नाचती और गाती हैं।।७३।।

जिनेन्द्रभवनों में उत्तम देव भक्ति से भेरी, मर्दल और घंटा आदि अनेक प्रकार के दिव्य बाजों को बजाते हैं।।७४।। इस प्रकार पूर्वदिशा के समान ही दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भागों में भी दिव्य द्रह हैं। विशेष इतना है कि इन दिशाओं में स्थित कमलयुक्त वापियों के नाम भिन्न भिन्न हैं।।७५।।

पुव्वादिसुं अरज्जा विरजासोका य वीदसोक त्ति।
दक्खिणअंजणसेले चत्तारो पउमिणीसंडा।।७६।।

विजय त्ति वइजयंती जयंतिअपराजिदा य तुरिमाए।
पच्छिमअंजणसेले चत्तारो कमलिणीसंडा।।७७।।

रम्मारमणीयाओ सुप्पहणामा य सव्वदोभद्दा।
उत्तरअंजणसेले पुव्वादिसु कमलिणीसंडा।।७८।।

एक्केके पासादा चउसट्ठिवणेसु अंजणगिरीणं।
धुव्वंतधयवडाया हवंति वररयणकणयमया।।७९।।

दक्षिण अंजनगिरि की पूर्वादिक दिशाओं में अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका नामक चार वापिकायें हैं।।७६।।

पश्चिम अंजनगिरी की चारों दिशाओं में विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और चौथी अपराजिता, इस प्रकार ये चार वापिकायें हैं।।७७।।

उत्तर अंजनगिरि की पूर्वादिक दिशाओं में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा नामक चार वापिकायें हैं।।७८।।

अंजनगिरियों के **चौंसठ वनों** में फहराती हुई ध्वजा–पताकाओं से संयुक्त उत्तम रत्न एवं सुवर्णमय एक एक प्रासाद है।।७९।।

भावार्थ—नंदीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं में चार–चार बावड़ी के चारों ओर चार–चार वन–उद्यान ऐसे ६४ उद्यान हैं। इनमें चौंसठ चैत्यवृक्ष हैं।

द्वितीय जंबूद्वीप

इसमें भी जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ती से)

जंबूद्वीवाहिंतो संखेज्जाणिं पयोधिदीवाणिं।
गंतूण अत्थि अण्णो जंबूदीओ परमरम्मो[1]।।१७९।।

तत्थ वि विजयप्पहुदिसु भवंति देवाण दिव्वणयरीओ।
उवरिं वज्जखिदीए चित्तामज्झम्मि पुव्वपहुदीसुं।।१८०।।

उच्छेहजोयणेणं पुरीओ बारससहस्सरुंदाओ।
जिणभवणभूसिदाओ उववणवेदीहिं जुत्ताओ।।१८१।।

पण्णत्तरिदलतुंगा पायारा जोयणद्धमवगाढा।
सव्वाणं णयरीणं णच्चंतविचित्तधयमाला।।१८२।।

कंचणपायाराणं वररयणविणिम्मियाण भूवासो।
जोयणपणुवीसदलं तच्चउभागो य मुहवासो।।१८३।।

२५ २५
२ । ४

द्वितीय जंबूद्वीप

इसमें भी जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ती से)

जम्बूद्वीप से आगे संख्यात समुद्र व द्वीपों के पश्चात् अतिशय रमणीय दूसरा जम्बूद्वीप है।।१७९।। वहाँ पर भी वज्रा पृथिवी के ऊपर चित्रा के मध्य में **पूर्वादिक दिशाओं में विजय प्रभृति देवों की दिव्य नगरियाँ** हैं।।१८०।। ये नगरियाँ उत्सेध योजन से बारह हजार योजनप्रमाण विस्तार से सहित, **जिनभवनों से विभूषित और उपवनवेदियों से संयुक्त हैं**।।१८१।। विस्तार १२०० यो.। इन सब नगरियों के प्राकार पचहत्तर के आधे (साढ़े सैंतीस) योजन ऊँचे, अर्ध योजन प्रमाण अवगाह से सहित और फहराती हुई विचित्र ध्वजाओं के समूह से संयुक्त हैं।।१८२।। उत्सेध ७५/२। अवगाह १/२। उत्तम रत्नों से निर्मित इन सुवर्णप्राकारों का भूविस्तार पच्चीस के आधे

१. तिलोयपण्णत्ती, भाग–२ पृ. ५५१ से ५६० तक।

एक्केक्काए दिसाए पुरीण पणुवीसगोउरदुवारे।
जंबूणदणिम्मविदा मणितोरणथंभरमणिज्जा।।१८४।।
बासट्ठि जोयणाणिं ताणं हवंति पुरोवरिपुराणं।
उदओ तदलमेत्तो रुदो गाढो दुबे कोसा।।१८५।।
६२। ३१। को २।
मज्झे चेट्ठदि रायं विचित्तबहुभवणएहि अदिरम्मं।
जोयणसदाणि बारस वासजुदं एक्ककोसउच्छेहो।।१८६।।
१२००। को १।
तस्स य थलस्स उवरिं समंतदो दोण्णि कोस उच्छेहं।
पंचसयचावरुंदं चउगोउरसंजुदं वेदी।।१८७।।
को २ । दंड ५००।
रायंगणबहुमज्झे कोससयं पंचवीसमब्भहियं।
विक्खंभो तद्दुगुणो उदओ गाढं दुवे कोसा।।१८८।।
१२५। २५०। को २।
पासादो मणितोरणसंपुण्णो अट्ठजोयणुच्छेहो।
चउवित्थारो दारो वज्जकवाडेहिं सोहिल्लो।।१८९।।
८।४।

(साढ़े बारह) योजन और मुखविस्तार पच्चीस का चतुर्थ भाग अर्थात् सवा छह योजनमात्र है।।१८३।। भूविस्तार २५/४। मुखविस्तार २५/४। इन नगरियों की एक-एक दिशा में सुवर्ण से निर्मित और मणिमय तोरण स्तम्भों से रमणीय पच्चीस गोपुरद्वार हैं।।१८४।। इन नगरियों के उत्तम भवनों की ऊँचाई बासठ योजन, इससे आधा विस्तार और अवगाह दो कोशमात्र है।।१८५।। उत्सेध ६२। विस्तार ३१। अवगाह को. २। नगरियों के मध्य में विचित्र, बहुत भवनों से अतिशय रमणीय, बारह सौ योजनप्रमाण विस्तार से सहित और एक कोश ऊँचा राजांगण स्थित है।।१८६।। विस्तार १२००। उत्सेध को. १। इस स्थल के ऊपर चारों ओर दो कोश ऊँची, पांच सौ धनुष विस्तीर्ण और चार गोपुरों से युक्त वेदी स्थित है।।१८७।। उत्सेध २ को. । विस्तार ५०० धनुष। राजांगण के बहुमध्य भाग में एक सौ पच्चीस कोश विस्तार वाला, इससे दूना ऊँचा, दो कोश मात्र अवगाह से सहित और मणिमय तोरणों से परिपूर्ण प्रासाद है। इसका वज्रमय कपाटों से सुशोभित द्वार आठ योजन ऊँचा और चार योजन मात्र विस्तार से सहित है।।१८८-१८९।। प्रासाद विस्तार १२५। उत्सेध २५०। अवगाह २ को.। द्वारोत्सेध ८।

एदस्स चउदिसासु चत्तारो होंति दिव्वपासादा।
उप्पण्णुप्पण्णाणं चउ चउ वट्टंति जाव छक्कंतं।।१९०।।
एत्तो पासादाणं परिमाणं मंडले पडिभणामो।
एक्को हवेदि मुक्खो चत्तारो मंडलम्मि पढमम्मि।।१९१।।
१। ४।
सोलस विदिए तदिए चउसट्ठी बेसदं च छप्पण्णं।
तुरिभे तं चउपहदं पंचमिए मंडलम्मि पासादा।।१९२।।
१६। ६४। २५६। १०२४।
चत्तारि सहस्साणिं छण्णउदिजुदाणि होंति छट्ठीए।
एत्तो पासादाणं उच्छेहादिं परूवेमो।।१९३।।
४०९६।
सव्वब्भंतरमुक्खप्पासादुस्सेहवासगाडसमा।
आदिमदुगमंडलए तस्स दलं तदिय-तुरिमम्मि।।१९४।।
पंचमिए छट्ठीए तद्दलमेत्तं हुवेदि उदयादी।
एक्केक्के पासादे एक्केक्का वेदिया विचित्तयरा।।१९५।।

विस्तार ४ यो.। इसकी चारों दिशाओं में चार दिव्य प्रासाद हैं। (?) उनसे आगे छठे मण्डल तक उत्तरोत्तर चार-चार गुणे प्रासाद हैं।।१९०।। यहाँ से प्रत्येक मण्डल के प्रासादों के प्रमाण को कहते हैं। एक (मध्य का) प्रासाद मुख्य है। प्रथम मण्डल में चार प्रासाद हैं।।१९१।। द्वितीय मण्डल में सोलह, तृतीय में चौंसठ, चतुर्थ में दो सौ छप्पन और पांचवें मण्डल में इससे चौगुणे अर्थात् दश सौ चौबीस प्रासाद हैं।।१९२।। द्वि. मं. १६। तृ. मं. ६४। च. मं. २५६। पं. मं. १०२४।

छठे मण्डल में चार हजार छियानवे प्रासाद हैं। अब यहाँ से आगे भवनों की ऊँचाई आदि का निरूपण किया जाता है।।१९३।। षष्ठ मं. ४०९६।

आदि के दो मंडलों में स्थित प्रासादों की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह सबके बीच में स्थित मुख्य प्रासाद की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह के समान है। तृतीय और चतुर्थ मंडल के प्रासादों की ऊँचाई आदि उससे आधी है। इससे भी आधी पंचम और छठे मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदिक है। प्रत्येक प्रासाद के विचित्रतर एक-एक वेदिका है।। १९४-१९५।।

वेकोसुच्छेहादिं पंचसयाणिं धणूणि वित्थिण्णा।
आदिल्लयपासादे पढमे विदियम्मि तम्मेत्ता।।१९६।।

पुव्विल्लवेदिअद्धं तदिए तुरिमम्मि होंति मंडलए।
पंचामिए छट्ठीए तस्सद्धपमाणवेदीओ।।१९७।।

गुणसंकमणसरूवट्ठिदाण सव्वाण होदि परिसंखा।
पंचसहस्सा चउसयसंजुत्ता एक्कसट्ठी य।।१९८।।

५४६१।

आदिमपासादादो उत्तरभागे ट्ठिदा सुधम्मसभा।
दलिदपणुवीसजोयणदीहा तस्सद्धवित्थारा।।१९९।।

२५/२। २५/४।

णवजोयणउच्छेहा गाउदगाढा सुवण्णरयणमई।
तीए उत्तरभागे जिणभवणं होदि तम्मेत्तं।।२००।।

९। को १।

पवणदिसाए पढमप्पासादादो जिणिंदगेहसमा।
चेट्ठदि उववादसभा कंचणवररयणणिवहमई।।२०१।।

२५/२ ।२५/४। ९। को १।

प्रथम प्रासाद के आश्रित वेदी दो कोश, ऊँचाई आदि से सहित और पाँच सौ धनुष विस्तीर्ण है। प्रथम और द्वितीय मंडल में स्थित प्रासादों की वेदियाँ भी इतनी मात्र ऊँचाई आदि से सहित हैं।।१९६।। तृतीय व चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की वेदिका की ऊँचाई व विस्तार का प्रमाण पूर्वोक्त वेदियों से आधा और इससे भी आधा प्रमाण पाँचवें व छठे मण्डल के प्रासादों की वेदिकाओं का है।।१९७।। गुणित क्रम से स्थित इन सब भवनों की संख्या पाँच हजार चार सौ इकसठ है।।१९८।। ५४६१। प्रथम प्रासाद के उत्तर भाग में पच्चीस योजन के आधे अर्थात् साढ़े बारह योजन लम्बी और इससे आधे विस्तार वाली सुधर्म सभा स्थित है।।१९९।। लम्बाई २५/२। विस्तार २५/४ योजन। **सुवर्ण और रत्नमयी यह सभा नौ योजन ऊँची और एक गव्यूति अर्थात् कोशमात्र अवगाह से सहित है। इसके उत्तरभाग में इतने मात्र प्रमाण से संयुक्त जिनभवन है**।।२००।। उत्सेध ९ यो.। अवगाह को.। प्रथम प्रासाद से वायव्यदिशा में जिनेन्द्र भवन के समान सुवर्ण एवं उत्तम रत्नसमूहों से निर्मित उपपाद सभा स्थित है।।२०१।। लम्बाई २५/४। विस्तार २५/४। उत्सेध ९ योजन। अवगाह १ को. १।

पुव्वदिसाए पढमप्पासादादो विचित्तविण्णासा।
चेट्ठदि अभिसेयसभा उववादसभाए सारिच्छा।।२०२।।

तत्थ च्चिय दिब्भाए अभिसेयसभासरिच्छवासादी।
होदि अलंकारसभा मणितोरणदाररमणिज्जा।।२०३।।

तस्सिं चिय दिब्भाए पुव्वसभासरिसउदयवित्थारा।
मंतसभा चामीयररयणमई सुंदरदुवारा।।२०४।।

एदे छप्पासादा पुव्वेहिं मंदिरेहि मेलविदा।
पंच सहस्सा चउसयअब्भहिया सत्तसट्ठीहिं।।२०५।।

५४६७।

ते सव्वे पासादा चउदिम्मुहविप्फुरंतकिरणेहिं।
वररयणपईवेहिं णिच्चच्चियणिच्चउज्जोवा।।२०६।।

पोक्खरणीरम्मेहिं उववणसंडेहिं विविहरुक्खेहिं।
कुसुमफलसोहिदेहिं सुरमिहुणजुदेहि सोहंति।।२०७।।

विद्दुमवण्णा केई केई कप्पूरवुंदसंकासा।
कंचणवण्णा केई केई वज्जिंदणीलणिहा।।२०८।।

प्रथम प्रासाद के पूर्व में उपपाद सभा के समान विचित्र रचना से संयुक्त अभिषेक सभा स्थित है।।२०२।। इसी दिशा भाग में अभिषेक सभा के समान विस्तारादि से सहित और मणिमय तोरणद्वारों से रमणीय अलंकार सभा है।।२०३।। इसी दिशाभाग में पूर्व सभा के सदृश ऊँचाई व विस्तार से सहित, सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित और सुन्दर द्वारों से संयुक्त मंत्रसभा है।।२०४।।

इन छह प्रासादों को पूर्व मन्दिरों में मिला देने पर भवनों की समस्त संख्या पाँच हजार चार सौ सड़सठ होती है।।२०५।। ५४६७।

जिनकी किरणें चारों दिशाओं में प्रकाशमान हो रही हैं ऐसे उत्तम रत्नमयी प्रदीपों से वे सब भवन नित्य अर्चित और नित्य उद्योतित रहते हैं।।२०६।। पुष्करिणिओं से रमणीय, फल-फूलों से सुशोभित, अनेक प्रकार के वृक्षों से सहित और देवयुगलों से संयुक्त ऐसे उपवन खण्डों से वे प्रासाद शोभायमान होते हैं।।२०७।। इनमें से कितने ही भवन मूंगे जैसे वर्ण वाले, कितने ही कपूर और कुंदपुष्प के सदृश, कितने ही सुवर्ण वर्ण और कितने ही वज्र एवं इन्द्रनीलमणि के सदृश हैं।।२०८।।

तेसुं पासादेसुं विजओ देवीसहस्ससोहिल्लो।
णिच्चजुवाणा देवा वररयणविभूसिदसरीरा।।२०९।।
लक्खणवंजणजुत्ता धादुविहीणा य वाहिपरिचत्ता।
विविहसुहेसुं सत्ता कीडंते बहुविणोदेणं।।२१०।।
सयणाणि आसणाणिं रयणमयाणिं भवंति भवणेसुं।
मउवाणि णिम्मलाणिं मणणयणाणंदजणणाणिं।।२११।।
आदिमपासादस्स य बहुमज्झे होदि कणयरणमयं।
सिहासणं विसालं सपादपीढं परमरम्मं।।२१२।।
सिंहासणमारूढो विजओ णामेण अहिवई तत्थ।
पुव्वमुहे पासादे तत्थाणंदेदि लीलाए।।२१३।।
तस्स य सामाणीया चेट्ठंते छस्सहस्सपरिमाणा।
उत्तरदिसाविभागे विदिसाए विजयपीढादो।।२१४।।
चेट्ठंति णिरुवमाणा छ च्चिय विजयस्स अग्गदेवीओ।
ताणं पीढा रम्मा सिंहासणपुव्वदिब्भाए।।२१५।।
परिवारा देवीओ तिण्णि सहस्सा हुवंति पत्तेक्कं।
साहियपल्लं आऊ णियणियठाणम्मि चेट्ठंति।।२१६।।

उन भवनों में हजारों देवियों से सुशोभित विजय नाम के देव शोभायमान हैं और वहाँ नित्ययुवक, उत्तम रत्नों से विभूषित शरीर से संयुक्त, लक्षण व व्यंजनों से सहित, धातुओं से विहीन, व्याधि से रहित तथा विविध प्रकार के सुखों में आसक्त देव बहुत विनोद के साथ क्रीडा करते हैं।।२०९-२१०।। इन भवनों में मृदुल, निर्मल और मन एवं नेत्रों को आनन्ददायक रत्नमय शय्याएँ व आसन विद्यमान हैं।।२११।। प्रथम प्रासाद के बहुमध्य भाग में अतिशय रमणीय और पादपीठ सहित सुवर्ण एवं रत्नमय विशाल सिंहासन है।।२१२।। वहाँ पूर्वमुख प्रासाद में सिंहासन पर आरूढ़ विजय नामक अधिपति देव लीला से आनन्द को प्राप्त होता है।।२१३।। विजय के सिंहासन से उत्तरदिशा और विदिशा में उसके छह हजार प्रमाण सामानिक देव स्थित रहते हैं।।२१४।। मुख्य सिंहासन के पूर्व दिशाभाग में विजयदेव की अनुपम छहों अग्रदेवियाँ स्थित रहती हैं। उनके सिंहासन रमणीय हैं।।२१५।। इनमें से प्रत्येक अग्रदेवी की परिवार देवियाँ तीन हजार हैं जिनकी आयु एक पल्य से अधिक होती है। ये परिवार देवियाँ भी अपने-अपने स्थान में स्थित रहती हैं।।२१६।।

बारस देवसहस्सा बाहिरपरिसाए विजयदेवस्स।
णइरिदिदिसाए ताणं पीढाणिं सामिपीढादो।।२१७।।
१२०००।
दस देवसहस्साणिं मज्झिमपरिसाए होंति विजयस्स।
दक्खिणदिसाविभागे तप्पीढा णाहपीढाहो।।२१८।।
१००००।
अब्भंतरपरिसाए अट्ठ सहस्साणि विजयदेवस्स।
अग्गिदिसाए होंति हु तप्पीढा णाहपीढादो।।२१९।।
८०००।
सेणामहत्तराणं सत्ताणं होंति दिव्वपीढाणिं।
सिंहासणपच्छिमदो वरकंचणरयणरइदाइं।।२२०।।
तणुरक्खा अट्ठारससहस्ससंखा हवंति पत्तेक्कं।
ताणं चउसु दिसासुं चेट्ठंते चंदपीढाणिं।।२२१।।
१८०००। १८०००। १८०००। १८०००।
सत्तसरमहुरगीयं गायंता पलहवंसपहुदीणि।
वायंता णच्चंता विजयं रंजंति तत्थ सुरा।।२२२।।

विजयदेव की बाह्य परिषद् में बारह हजार देव हैं। उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन से नैऋत्य दिशाभाग में स्थित रहते हैं।।२१७।। १२०००।

विजयदेव की मध्य परिषद् में दश हजार देव होते हैं। उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन से दक्षिण दिशाभाग में स्थित रहते हैं।।२१८।। १००००।

विजयदेव की अभ्यन्तर परिषद् में जो आठ हजार देव रहते हैं, उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन से अग्निदिशा में स्थित रहते हैं।।२१९।। ८०००।

सात सेना महत्तरों के उत्तम सुवर्ण एवं रत्नों से रचित दिव्य पीठ मुख्य सिंहासन के पश्चिम में होते हैं।।२२०।। विजयदेव के जो अठारह हजार प्रमाण शरीररक्षक देव हैं, उन प्रत्येक के चन्द्रपीठ चारों दिशाओं में स्थित हैं।।२२१।। पूर्व १८०००।

दक्षिण १८०००। पश्चिम १८०००। उत्तर १८०००। वहाँ देव सात स्वरों से परिपूर्ण मधुर गीत को गाते और पटह एवं बांसुरी आदिक बाजों को बजाते व नाचते हुए विजयदेव का मनोरंजन करते हैं।।२२२।।

रायंगणस्स बाहिर परिवारसुराण होंति पासादा।
विप्फुरिदधयवडाया वररयणजोइअधियंता।।२२३।।

बहुविहरइकरणेहिं कुसलाओ णिच्चजोव्वणजुदाओ।
णाणाविगुव्वणाओ मायालोहादिरहिदाओ।।२२४।।

उल्लसिदविब्भमाओ चित्तसहावेण पेम्मवंताओ।
सव्वाओ देवीओ लग्गंते विजयदेवस्स।।२२५।।

णियणयराणि णिविट्ठा देवा सव्वे वि विणयसंपुण्णा।
णिब्भरभत्तिपसत्ता सेवंते विजयमणवरदं।।२२६।।

तण्णयरीए बाहिर गंतूणं जोयणाणि पणवीसं।
चत्तारो वणसंडा पत्तेक्कं चेत्ततरुजुत्ता।।२२७।।

होंति हु ताणि वणाणिं दिब्वाणि असोयसत्तवण्णाणं।
चंपयचूदवणा तह पुव्वादिपदाहिणक्कमेणं।।२२८।।

बारससहस्सजोयणदीहा ते होंति पंचसयरुंदा।
पत्तेक्कं वणसंडा बहुविहरुक्खेहिं परिपुण्णा।।२२९।।

१२०००। ५००।

राजांगण से बाहर फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और उत्तम रत्नों की ज्योति से अधिक रमणीय परिवार देवों के प्रासाद हैं।।२२३।।

जो बहुत प्रकार की रति के करने में कुशल हैं, नित्य यौवन से युक्त हैं, नाना प्रकार की विक्रिया को करती हैं, माया एवं लोभादि से रहित हैं, उल्लासयुक्त विलास सहित हैं और स्वभाव से ही प्रेम करने वाली हैं ऐसी समस्त देवियाँ विजयदेव की सेवा करती हैं।।२२४-२२५।।

अपने नगरों में रहने वाले सब ही देव विनय से परिपूर्ण और अतिशय भक्ति में आसक्त होकर निरन्तर विजयदेव की सेवा करते हैं।।२२६।। उस नगरी के बाहर पच्चीस योजन जाकर चार वनखण्ड स्थित हैं, जो प्रत्येक चैत्यवृक्षों से संयुक्त हैं।।२२७।। अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आम्र वृक्षों के ये वन पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से हैं।।२२८।।

बहुत प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण वे प्रत्येक वनखण्ड बारह हजार योजन लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं।।२२९।। दीर्घ १२०००। विस्तीर्ण ५०० योजन।

एदेसुं चेत्तदुमा भावणचेत्तप्पमाणसारिच्छा।
ताण चउसु दिसासुं चउचउजिणणाहपडिमाओ।।२३०।।

देवासुरमहिदाओ सपाडिहेराओ रयणमइयाओ।
पल्लंकआसणाओ जिणिंदपडिमाओ विजयंते।।२३१।।

चेत्तदुमस्सीसाणे भागे चेट्ठेदि दिव्वपासादो।
इगितीसजोयणाणिं कोसब्भहियाणि वित्थिण्णो।।२३२।।

३१। को १।

वासादि दुगुणउदओ दुकोस गाढा विचित्तमणिखंभो।
चउ-अट्ठजोयणाणिं रुंदुच्छेहा दु तद्दारे।।२३३।।

६२। को २। ४। ८

सुजलंतरयणदीओ विचित्तसयणासणेहिं परिपुण्णो।
सद्दरसरूवगंधप्पासेहिं सुरमणारम्मो।।२३४।।

कणयमयकुड्डविरचिदविचित्तचित्तप्पबंधरमणिज्जो।
अच्छरियजणणरूवो किं बहुणा सो णिरुवमाणो।।२३५।।

इन वनों में भावनलोक के चैत्यवृक्षों के प्रमाण से सदृश जो चैत्यवृक्ष स्थित हैं उनकी चारों दिशाओं में चार-चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं।।२३०।।

देव व असुरों से पूजित, प्रातिहार्यों से सहित और पद्मासन से स्थित वे रत्नमय जिनेन्द्र प्रतिमाएँ जयवंत हैं।।२३१।। प्रत्येक चैत्यवृक्ष के ईशानदिशाभाग में एक कोश अधिक इकतीस योजन प्रमाण विस्तार वाला दिव्य प्रासाद स्थित है।।२३२।। योजन ३१, को. १।

विचित्र मणिमय खम्भों से संयुक्त इस प्रासाद की ऊँचाई विस्तार से दुगुणी अर्थात् साढ़े बासठ योजन और अवगाह दो कोशप्रमाण है। उसके द्वार का विस्तार चार योजन और ऊँचाई आठ योजन है।।२३३।। ऊँचाई योजन ६२, को. २। (अवगाह को. २)। विस्तार ४। ऊँचाई ८ योजन।

उपर्युक्त प्रासाद देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित, विचित्र शय्याओं व आसनों से परिपूर्ण और शब्द-रस-गन्ध एवं स्पर्श से देवों के मन को आनन्दजनक, सुवर्णमय भीतों पर रचे गए विचित्र चित्रों के सम्बन्ध से रमणीय और आश्चर्यजनक स्वरूप से संयुक्त हैं। बहुत कहने से क्या ? वह प्रासाद अनुपम है।।२३४-२३५।।

तस्सिं असोयदेओ रमेदि देवीसहस्ससंजुत्तो।
वररयणमउडधारी चामरछत्तादिसोहिल्लो।।२३६।।
सेसम्मि वइजयंतत्तिदए विजयं व वण्णणं सयलं।
दक्खिणपच्छिमउत्तरदिसासु ताणं पि णयराणिं।।२३७।।

उस प्रासाद में उत्तम रत्नमुकुट को धारण करने वाला और चमर-छत्रादि से सुशोभित वह अशोक देव हजारों देवियों से युक्त होकर रमण करता है।।२३६।।

शेष वैजयन्तादि तीन देवों का सम्पूर्ण वर्णन विजय देव के ही समान है। इनके भी नगर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित हैं।।२३७।।

भावार्थ—इन नगरों के बाहर वनों में चारों दिशाओं में अशोक, सप्तपर्ण, चंपक व आम्रवनों में चैत्यवृक्ष हैं, जिनमें जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

ऊर्ध्वलोक के चैत्यवृक्ष

वैमानिकदेवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष

(त्रिलोकसार से)

साम्प्रतमिन्द्राणां नगरस्थानं विस्तारं च गाथाद्वयेनाह—

सोहम्मादिचउक्के जुम्मचउक्के य सेसकप्पे य।
सगदेविजुदिंदाणं णयराणि हवंति णवयपदे[१]।।४८८।।

सौधर्मादिचतुष्के युग्मचतुष्के च शेषकल्पे च। स्वकदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति नवकपदे।।४८८।।

सोहम्मादि। सौधर्मादिचतुष्के ब्रह्मादियुग्मचतुष्के आनतादिशेषकल्पे च आनतादीनां नगरेषु प्रत्येकं विंशतिसहस्रयोजनव्याससाधारणात्कल्पचतुष्टयमेकं स्थलं कृतं इति नवसु स्थानेषु स्वस्वदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति।।४८८।।

ऊर्ध्वलोक के चैत्यवृक्ष

वैमानिकदेवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष

(त्रिलोकसार से)

दो गाथाओं द्वारा इन्द्रों के नगर स्थान और विस्तार का वर्णन करते हैं :—

गाथार्थ :— सौधर्मादि चार कल्पों के चार, ब्रह्मादि चार युगलों के चार और आनतादि अवशेष कल्पों का एक, इस प्रकार इन नौ स्थानों में अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त इन्द्रों के नगर हैं।।४८८।।

विशेषार्थ :— सौधर्मादि चार कल्पों के चार स्थान, ब्रह्मादि चार युगलों के चार स्थान और आनतादि कल्पों के नगरों में प्रत्येक नगर बीस हजार योजन व्यास की समानता वाला है अतः इनका एक स्थान, इस प्रकार कुल नौ स्थानों में अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त देवों के नगर हैं।

इन कोटों के अन्तराल में स्थित देवों के भेद दो गाथाओं में कहते हैं :—

गाथार्थ :— सेनापति और तनुरक्षक देव प्रथम अन्तराल में, तीनों परिषद देव दूसरे अन्तराल में, तीसरे अन्तराल में सामानिक देव तथा चौथे अन्तराल में आरोहक, आभियोग्य और किल्विषिकादि देव अपने-अपने योग्य प्रासादों में रहते हैं। पाँचवें अन्तराल से अर्धलाख (५० हजार) योजन आगे जाकर नन्दनवन हैं इनके विशेष नाम आगे कहेंगे ।।५००-५०१।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ४२४, ४३४, ४३५।

कथमिति चेत्—

सुरपुरवहिं असोयं सत्तच्छदचंपचूदवणखण्डा।
पउमद्दहसममाणा पत्तेयं चेत्तरुक्खजुदा।।५०२।।

सुरपुरबहिः अशोकं सप्तच्छदचम्पचूतवनखण्डाः।
पद्मह्रदसममानाः प्रत्येकं चैत्यवृक्षयुताः।।५०२।।

सुरपुर। सुरपुराद् बहिः पूर्वादिदिक्षु अशोकवनखण्डाः सप्तच्छदवनखण्डाः चम्पकवनखण्डाश्चूत-वनखण्डाःपद्मह्रदसमप्रमाणाः सहस्रयोजनायामास्तदर्द्धव्यासा इत्यर्थः। प्रत्येकमेकैकचैत्यवृक्षयुताः।।५०२।।

अथ तद्वनमध्यस्थचैत्यवृक्षस्वरूपं निरूपयन् तच्चैत्यनमस्कारमाह—

चउचेत्तदुमा जंबूमाणा कप्पेसु ताण चउपासे।
पल्लंकगजिणपडिमा पत्तेयं ताणि वंदामि।।५०३।।

विशेषार्थ :— कोटों (प्राकारों) के प्रथम अन्तराल में सेनापति और तनुरक्षक देव रहते हैं। द्वितीय अन्तराल में तीनों पारिषद, तृतीय अन्तराल में सामानिक देव तथा चतुर्थ अन्तराल में वृषभ, तुरङ्गादि पर सवारी करने वाले आरोहक, आभियोग्य एवं किल्विषिकादि देव अपने-अपने योग्य भवनों में रहते हैं। पाँचवें कोट से ५० हजार योजन आगे जाकर नन्दनवन हैं, ये वन आनन्द देने वाले हैं इसलिये इन्हें नन्दनवन कहते हैं। इनके विशेष नाम आगे कहेंगे।

वनों के विशेष नाम एवं प्रमाण :—

गाथार्थ **:—देवों के नगर से बाहर पद्मसरोवर के प्रमाण को धारण करने वाले तथा एक-एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त अशोक वनखण्ड, सप्तच्छद वनखण्ड, चम्पक वनखण्ड और आम्र वनखण्ड हैं।।५०२।।**

विशेषार्थ :— देवों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र वनखण्ड हैं। प्रत्येक का प्रमाण—पद्मद्रह नामक सरोवर के सदृश एक हजार योजन लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं तथा प्रत्येक वनखण्ड एक-एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त हैं।

वन के बीच में स्थित चैत्यवृक्षों के स्वरूप का निरूपण करते हुए उन चैत्यवृक्षों को नमस्कार करते हैं—

गाथार्थ :— सौधर्मादि कल्पों में चारों वन सम्बन्धी चार चैत्यवृक्ष, जम्बूवृक्ष प्रमाण वाले हैं। **प्रत्येक चैत्यवृक्ष के चारों पार्श्वभागों में पल्यङ्कासन से एक-एक जिनप्रतिमा है**, उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ।।५०३।।

चतुश्चैत्यद्रुमाः जम्बूमानाः कल्पेषु तेषां चतुःपार्श्वेषु।
पल्यङ्कगजिनप्रतिमाः प्रत्येकं तानि वन्दामि।।५०३।।

चउचेत्त। चत्वारश्चैत्यद्रुमा जम्बूवृक्षप्रमाणाः सौधर्मादिषु कल्पेषु तेषां चतुर्षु पार्श्वेषु पल्यङ्कजिनप्रतिमाः प्रत्येकं ताः वन्दे।।५०३।।

सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

सयलिंदमंदिराणं पुरदो णग्गोहपायवा होंति।
एक्केक्कं पुढविमया पुव्वोदिदजंबुदुमसरिसा।।४०५।।
तम्मूले एक्केक्का जिणिंदपडिमा य पडिदिसं होदि।
सक्कादिणमिदचलणा सुमरणमेत्ते वि दुरिदहरा।।४०६।।
सक्कस्स मंदिरादो ईसाणदिसे सुधम्मणामसभा।
तिसहस्सकोसउदया चउसयदीहा तदद्धवित्थारा।।४०७।।
३०००।४००।२००।।
तीए दुवारछेहो कोसा चउसट्ठि तद्दलं रुंदो।
सेसाओ वण्णणाओ सक्कप्पासाददसरिसाओ।।४०८।।
६४।३२।

विशेषार्थ :—सौधर्मादि कल्पों में अशोकादि चारों वनखण्डों में जो चार चैत्यवृक्ष हैं, उनका प्रमाण जम्बूवृक्ष के प्रमाण सदृश है। उन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के चारों पार्श्व भागों में **पल्यङ्कासन स्थित एक-एक जिनप्रतिमा** है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ती से)

समस्त इन्द्रमन्दिरों-इन्द्र भवनों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं। इनमें एक-एक वृक्ष पृथिवीस्वरूप और पूर्वोक्त जंबूवृक्ष के सदृश होते हैं।।४०५।।

इनके मूल में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमा होती है जिसके चरणों में शक्रादिक प्रणाम करते हैं तथा जो स्मरण मात्र में ही पाप को हरने वाली है।।४०६।। सौधर्म इन्द्र के मन्दिर से ईशान दिशा में तीन हजार (तीन सौ) कोश ऊँची, चार सौ कोश लंबी और इससे आधे विस्तार वाली सुधर्मा नामक सभा है।।४०७।। उ. ३०००, दी. ४००, वि.२०० कोस।

सुधर्मा सभा के द्वारों की ऊँचाई चौसठ कोश और विस्तार इससे आधा है। शेष वर्णन सौधर्म इन्द्र के प्रासाद के सदृश है।।४०८।।

रम्माए सुधम्माए विविहविणोदेहि कीडदे सक्को।
बहुविहपरिवारजुदो भुंजंतो विविहसोक्खाणिं।।४०९।।
तत्थेसाणदिसाए उववादसभा हुवेदि पुव्वसमा।
दिप्पंतरयणसेज्जा विण्णासविसेससोहिल्ला।।४१०।।
तीए दिसाए चेट्ठदि वररयणमओ जिणिंदपासादो।
पुव्वसरिच्छो अहवा पंडुगजिणभवणसारिच्छो।।४११।।

प्रत्येक इन्द्रनगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

तप्परदो गंतूणं पण्णाससहस्सजोयणाणं च।
होंति हु दिव्ववणाणिं इंदपुराणं चउदिसासुं[1]।।४२९।।
पुव्वादिसु ते कमसो असोयसत्तच्छदाण वणसंडा।
चंपयचूदाण तहा पउमद्दहसरिसपरिमाणा।।४३०।।
एक्केक्का चेत्ततरू तेसु असोयादिणामसंजुत्ता।
णग्गोहतरुसरिच्छा वरचामरछत्तपहुदिजुदा।।४३१।।

उत्सेध ६४, विस्तार ३२ कोश। इस रमणीय सुधर्मा सभा में बहुत प्रकार के परिवार से युक्त सौधर्म इन्द्र विविध सुखों को भोगता हुआ अनेक विनोदों से क्रीड़ा करता है।।४०९।।

वहाँ ईशान दिशा में पूर्व के समान उपपाद सभा है। यह सभा देदीप्यमान रत्नशय्याओं से सहित और विन्यासविशेष से शोभायमान है।।४१०।।

उसी दिशा में पूर्व के समान अथवा पाण्डुकवन सम्बन्धी जिनभवन के सदृश उत्तम रत्नमय जिनेन्द्रप्रासाद है ।।४११।।

प्रत्येक इंद्र नगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ती से)

इसके आगे पचास हजार योजन जाकर इन्द्रपुरों की चारों दिशाओं में दिव्य वन हैं।।४२९।। **पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से वे अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र वृक्षों के वनखण्ड हैं। इन वनों का प्रमाण पद्म द्रह के वनों के समान है।।४३०।। उन वनों में अशोकादि नामों से संयुक्त और उत्तम चमर-छत्रादि से युक्त न्यग्रोध तरु के सदृश एक-एक चैत्यवृक्ष है।।४३१।।**

१. तिलोयपण्णत्ती अधिकार ७, पृ. ८३०।

पोक्खरणीवावीहिं मणिमय भवणेहिं संजुदा विउला।
सव्वउडुजोग्गपल्लवकुसुमफला भांति वणसंडा।।४३२।।

नवग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष हैं।

(तिलोयपण्णत्ती से)

उववादसभा विविहा कप्पातीदाण होंति सव्वाणं।
जिणभवणा पासादा णाणाविहदिव्वरयणमया[1]।।४५३।।
अभिसेयसभा संगीयपहुदिसालाओ चित्तरुक्खा य।
देवीओ ण दीसंति कप्पातीदेसु कइया वि।।४५४।।

इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा

(सिद्धान्तसार दीपक से)

तत इन्द्रपुराद्बाह्ये चतुर्दिक्षु विमुच्य च।
लक्षार्धं योजनानां स्युश्चत्वारिंशद्वनान्यपि[2]।।१४९।।
अशोकं सप्तपर्णाख्यं चम्पकाह्वयमाम्रकम्।
इति नामाङ्कितान्येव शाश्वतानि वनान्यपि।।१५०।।

पुष्करिणी वापियों व मणिमय भवनों से संयुक्त तथा सब ऋतुओं के योग्य पत्र, कुसुम एवं फलों से परिपूर्ण विपुल वनखण्ड शोभायमान हैं।।४३२।।

नवग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष हैं।

(तिलोयपण्णत्ती से)

सब कल्पातीतों के विविध प्रकार की उपपाद **सभाएँ, जिनभवन,** नाना प्रकार के दिव्य रत्नों से निर्मित प्रासाद, अभिषेकसभा, संगीत आदि शालाएँ और **चैत्यवृक्ष भी होते** हैं परन्तु कल्पातीतों के देवियाँ कदापि नहीं दिखतीं।।४५३-४५४।।

इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा

(सिद्धान्तसार दीपक से)

अर्थ–**इन्द्रों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में पचास-पचास हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के शाश्वत चार वन हैं।।१४९-१५०।।**

१. तिलोयपण्णत्ती अधिकार ७, पृ. ८३३। २. सिद्धान्तसार दीपक पृ. ५४०।

योजनानां सहस्रेणायतानि विस्तृतानि च।
सहस्रार्धेन रम्याणि भवन्ति सफलानि वै।।१५१।।

अमीषां मध्यभागेषु चत्वारश्चैत्यपादपाः।
जम्बूद्रुमसमानाः स्युरशोकाद्या मनोहराः।।१५२।।

एषां मूले चतुर्दिक्षु जिनेन्द्रप्रतिमाः शुभाः।
देवार्च्या बद्धपर्यङ्काः सन्ति भास्वरमूर्तयः।।१५३।।

सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर-चैत्यवृक्ष

(लोक विभाग से)

सौधर्मे व सभैशाने शेषेन्द्राणां सभास्तथा।
उपपातसभाश्चैव अर्हदायतनानि च[१]।।२६३।।

शतार्धायामविस्तीर्णाः पुरस्तान्मुखमण्डपाः।
वेदिकाभिः परिक्षिप्ता नानारत्नशतोज्ज्वलाः।।२६४।।

।१००। ५०।

उत्तम फलों से युक्त इन प्रत्येक रमणीक वनों की लम्बाई एक हजार योजन और चौड़ाई पाँच सौ योजन प्रमाण है।।१५१।।

इन चारों वनों के मध्य भाग में जम्बूवृक्ष सदृश प्रमाण वाले, अत्यन्त मनोहर **अशोक आदि चार चैत्यवृक्ष हैं।।१५२।।**

इन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के मूल में चारों दिशाओं में, देव समूहों से पूज्य, पद्मासन एवं देदीप्यमान शरीर की कान्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की एक-एक प्रतिमाएँ हैं।।१५३।।

सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर-चैत्यवृक्ष

(लोक विभाग से)

सौधर्म कल्प के समान ऐशान कल्प में भी सभागृह है। उसी प्रकार शेष इन्द्रों के भी सभागृह, उपपातसभा और जिनायतन होते हैं।।२६३।। उनके आगे सौ (१००) योजन दीर्घ, इससे आधे (५० यो.) विस्तीर्ण, वेदिकाओं से वेष्टित और सैकड़ों नाना प्रकार के रत्नों से उज्ज्वल मुखमण्डप होते हैं।।२६४।। उनमें इन्द्र पर्व के दिनों में सामानिक आदि देवों के साथ भक्ति से जिन भगवान् की पूजा करते हैं तथा कथाओं के साथ (तत्त्वचर्चा करते हुए) वहाँ स्थित होते हैं।।२६५।। कल्पों में तथा आगे ग्रैवेयक

१. लोकविभाग–विभाग–१० पृ. २०५।

सामानिकादिभिः सार्धम् इन्द्राः पर्वसु सादराः।
पूजयन्त्यर्हतां तेषु कथाभिरपि चासते।।२६५।।

कल्पेषु परतश्चापि सिद्धायतनवर्णना।
आयागाः खलु कल्पेषु सभा ग्रैवेयतः स्मृताः।।२६६।।

योजनाष्टकमुद्विद्धा तावदेव च विस्तृता।
उपपातसभेन्द्राणां त्रायस्त्रिंशवतां स्मृता।।२६७।।

अशोवकं सप्तपर्णं च चम्पवकं चूतमेव च।
पूर्वाद्यानि वनान्याहुर्देवराजबहिःपुरात्।।२६८।।

आयतानि सहस्रं च तदर्धं विस्तृतान्यपि।
प्राकारः परितस्तेषां मध्ये चैत्यद्रुमा अपि।।२६९।।

। १००० । ५००।

अर्हतां प्रतिबिम्बानि जाम्बूनदमयानि च।
तेषां चतुर्षु पार्श्वेषु निषण्णानि चकासते।।२७०।।

वालुवकं पुष्पवकं चैव सौमनस्यं ततः परम्।
श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रं प्रीतिकृद्रम्यकं तथा।।२७१।।

मनोहरविमानं च अर्चिमाली च नामतः।
विमलं च विमानानि यानकानीति लक्षयेत्।।२७२।।

नियुतव्यासदीर्घाणि वैक्रियाणीतराणि च।
वैक्रियाणि विनाशीनि स्वभावानि ध्रुवाणि च।।२७३।।

आदि में भी सिद्धायतन का वर्णन करना चाहिए। आयाग (न्यग्रोध वृक्ष) कल्पों में तथा सभाभवन ग्रैवेयक में माने गए हैं।।२६६।। त्रायस्त्रिंशों के साथ इन्द्रों की उपपात सभा आठ योजन ऊँची और उतनी ही विस्तृत कही गई है।।२६७।। **इन्द्रपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आम्र ये चार वन स्थित हैं।।२६८।। वे वन हजार (१०००) योजन लंबे** और इससे आधे (५०० यो.) विस्तृत हैं। उनके चारों ओर प्राकार और मध्य में **चैत्यवृक्ष** स्थित हैं।।२६९।। **उक्त चैत्यवृक्षों के चारों पार्श्वभागों में पल्यंकासन से स्थित सुवर्णमय जिनबिम्ब शोभायमान हैं।।२७०।।** वालुक, पुष्पक, सौमनस्य, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिकृत्, रम्यक, मनोहर, अर्चिमाली और विमल ये यानविमान जानना चाहिए। ये एक लाख (योजन) लंबे-चौड़े यानविमान विक्रियानिर्मित और प्राकृतिक भी होते हैं। उनमें विक्रियानिर्मित विमान नश्वर और स्वाभाविक विमान स्थिर होते हैं।।२७१-२७३।।

सौधर्मादिचतुष्के च ब्रह्मादिषु तथा क्रमात्।
आनतारणयोश्चैव उक्तान्येतानि योजयेत्।।२७४।।

स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तम्भ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि

(लोकविभाग से)

तत्र सिंहासने दिव्ये सर्वरत्नमये शुभे।
स्वैरं निषण्णो विस्तीर्णे जयशब्दाभिनन्दितः[1]।।२५४।।
वृतः सामानिकैर्देवैस्त्रायस्त्रिंशैस्तथैव च।
सुखासनस्थैः श्रीमद्भिस्तन्मुखोन्मुखदृष्टिभिः।।२५५।।
चित्रभद्रासनस्थाभिर्वामदक्षिणपार्श्वयोः।
संक्रीडयमानो देवीभिः क्रीडारतिपरायणः।।२५६।।
तत्र योजनविस्तीर्णः षट्कृतिं च समुच्छ्रितः।
स्तम्भो गोरुतविस्तारधाराद्वादशसंयुतः।।२५७।।
वज्रमूर्तिः सपीठोऽस्मिन् क्रोशतत्पाददीर्घकः।
व्यासाश्च रत्नशिक्यस्थास्तिष्ठन्ति च समुद्गकाः।।२५८।।

।१।१/४।

ये उपर्युक्त विमान क्रम से सौधर्म आदि चार कल्पों, ब्रह्मादि चार युगलों तथा आनत व आरण कल्प; इस प्रकार इन दस स्थानों में कहे गए योजित करना चाहिए।।२७४।।

स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तम्भ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि

(लोकविभाग से)

उस सभाभवन में 'जय-जय' शब्द से अभिनन्दित इन्द्र दिव्य, सर्वरत्नों से निर्मित, शुभ एवं विस्तीर्ण सिंहासन के ऊपर स्वेच्छापूर्वक विराजमान होता है। वह सुखकारक आसनों पर स्थित एवं उसके मुख की ओर दृष्टि रखने वाले ऐसे कान्तियुक्त सामानिक और त्रायस्त्रिंस देवों से वेष्टित होकर क्रीड़ा में अनुराग रखता हुआ अपने वाम और दक्षिण भागों में अनेक प्रकार के भद्रासनों पर स्थित देवियों के साथ क्रीड़ा किया करता है।।२५४-२५६।। वहाँ एक योजन विस्तीर्ण, छह के वर्गभूत छत्तीस योजन ऊँचा, एक कोस विस्तार वाली बारह धाराओं से संयुक्त और पादपीठ से सहित वज्रमय स्तम्भ है। इसके ऊपर एक कोस लंबे और पाव (१/४) कोस विस्तृत रत्नमय सींके के ऊपर स्थित करण्डक है।।२५७-२५८।।

१. लोक विभाग, अधिकार-१०, पृ. २०४

सक्रोशानि हिषट् तूर्ध्वं योजनान्यसमुद्गकाः।
क्रोशन्यूनानि तावन्ति अधश्चाप्यसमुद्गकाः।।२५९।।

।२५/४। २३/४।

जिनानां रुच्यकास्तेषु सुरैः स्थापितपूजिताः।
भरतैरावतेशानां सौधर्मैशानयोर्द्वयोः।।२६०।।
पूर्वापरविदेहेषु जिनानां रुच्यकाः पुनः।
सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोर्न्यस्तपूजिताः।।२६१।।
न्यग्रोधाः प्रतिकल्पं च आयागाः पादपाः शुभाः।
जम्बूमानाश्चतुःपार्श्वे पल्यङ्कप्रतिमायुताः।।२६२।।

उक्तं च (ति. प. ८,४०५-६)

सयलिंदमंदिराणं पुरदो णग्गोहपायवा होंति।
एक्केक्कं पुढविमया पूव्वोदिदजंबुदुमसरिसा।।९।।
तम्मूले एक्केक्का जिणिंदपडिमा य पडिदिसं होंति।
सक्कादिणमियचलणा सुमरणमेत्ते वि दुरिदहरा।।१०।।

मानस्तम्भ के ऊपर सवा छह (६-१/४) योजन ऊपर और पौने छह (५-३/४) योजन नीचे वे करण्डक नहीं हैं।।२५९।। सौधर्म और ऐशान इन दो कल्पों में स्थित उन स्तम्भों के ऊपर देवों के द्वारा स्थापित और पूजित भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकरों के आभूषण रहते हैं।।२६०।। सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पों में स्थित उन स्तम्भों के ऊपर देवों द्वारा स्थापित एवं पूजित पूर्व और अपर विदेह क्षेत्रों के तीर्थंकरों के आभूषण रहते हैं।।२६१।। **प्रत्येक कल्प में अपने चारों पार्श्वभागों में विराजमान ऐसी पल्यंकासन युक्त प्रतिमाओं से सुशोभित उत्तम न्यग्रोध आयाग वृक्ष होते हैं। ये वृक्ष प्रमाण में जम्बूवृक्ष के समान हैं।।२६२।।**

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा भी है—

समस्त इन्द्रप्रासादों के आगे पृथिवी के परिणामस्वरूप एक-एक **न्यग्रोध वृक्ष** होते हैं। वे प्रमाण आदि में पूर्वोक्त जम्बूवृक्ष के समान हैं।।९।। **उनके मूल भाग में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनप्रतिमा होती है।** स्मरण मात्र से ही पाप को नष्ट करने वाली उन प्रतिमाओं के चरणों में इन्द्रादि नमस्कार करते हैं।।१०।।

समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ

(तिलोयपण्णत्ती से)

तत्तो चउत्थउववणभूमीए असोयसत्तवण्णवणं ।
चंपयचूदवणाणं पुव्वादिदिसासु राजंति।।८०३।।
विविहवणसंडमंडणविविहणईपुलिणकीडणगिरीहिं।
विविहवरवाविआहिं उववणभूमीउ रम्माओ।।८०४।।
एक्केक्काए उववणखिदिए तरवो यसोयसत्तदला।
चंपयचूदा सुंदरभूदा चत्तारि-चत्तारि।।८०५।।
चामरपहुदिजुदाणं चेत्ततरूणं हवंति उच्छेहा।
णियणियजिणउदएहिं बारसगुणिदेहिं सारिच्छा।।८०६।।

६०००।५४००।४८००।४२००।३६००।३०००।२४००।१८००।१२००।१०८०।
९६०। ८४०। ७२०।
६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०। १८०। १२०। २७। २१।

मणिमयजिणपडिमाओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ता।
एक्केक्कस्सिं चेत्तद्दुमम्मि चत्तारि चत्तारि।।८०७।।

समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ

(तिलोयपण्णत्ती से)

इसके आगे चौथी उपवन भूमि होती है, जिसमें पूर्वादिक दिशाओं के क्रम से अशोकवन, सप्तपर्णवन, चम्पकवन और आम्रवन ये चार वन शोभायमान होते हैं।।८०३।। ये उपवनभूमियाँ विविध प्रकार के वनसमूहों से मण्डित, विविध नदियों के पुलिन और क्रीडापर्वतों से तथा अनेक प्रकार की उत्तम वापिकाओं से रमणीय होती हैं।।८०४।। एक-एक उपवनभूमि में **अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र** ये चार-चार सुन्दर वृक्ष होते हैं।।८०५।। चामरादि (चँवर) से सहित चैत्यवृक्षों की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई के सदृश होती है।।८०६।।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित आठ महाप्रातिहार्यों से संयुक्त **चार-चार मणिमय जिनप्रतिमाएँ होती हैं।।८०७।।** उपवन की वापिकाओं के जल से अभिषिक्त जनसमूह एक भवजाति को देखते हैं और उसके निरीक्षण मात्र के होने पर अर्थात् वापी के जल में निरीक्षण करने पर सात अतीत व अनागत भवजातियों को देखते हैं।।८०८।। एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित व तीन पीठों के ऊपर **चार-चार मानस्तम्भ**

उववणवाविजलेणं सित्ता पेच्छंति एक्कभवजाइं।
तस्स णिरिक्खणमेत्ते सत्तभवातीदभाविजादीओ।।८०८।।
सालत्तयपरिअरिया पीढत्तयउवरि माणथंभा य।
चत्तारो चत्तारो एक्केक्के चेत्तरुक्खम्मि।।८०९।।
चत्तारो चत्तारो पुव्वादिसु महा णमेरुमंदारा।
संताणपारिजादा सिद्धत्था कप्पभूमीसुं।।८३३।।
सव्वे सिद्धत्थतरू तिप्पायारा तिमेहलसिरत्था।
एक्केक्कस्स य तरुणो मूले चत्तारि चत्तारि।।८३४।।
सिद्धाणं पडिमाओ विचित्तपीढाओ रयणमइयाओ।
वंदणमेत्तणिवारियदुरंतसंसारभीदीओ ।।८३५।।
सालत्तयपरिवेढियतिपीढउवरम्मि माणथंभा य।
चत्तारो चत्तारो सिद्धत्थतरुम्मि एक्केक्के।।८३६।।
कल्पतरू सिद्धत्था कीडणसालाओ तासु पासादा।
णियणियजिणउदयेहिं बारसगुणिदेहिं समउदया।।८३७।।

६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००।
१२००। १०८०।
९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०।
३००। २४०।
१८०। १२०। २७। २१।

होते हैं।।८०९।। कल्पभूमियों के भीतर पूर्वादिक दिशाओं में **नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात, ये चार-चार महान् सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं।। ८३३।। ये सब सिद्धार्थ वृक्ष** तीन कोटों से युक्त और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित होते हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूल भाग में विचित्र पीठों से संयुक्त और **वन्दना करने मात्र से ही दुरन्त संसार के भय को नष्ट करने वाली ऐसी रत्नमय चार-चार सिद्धों की प्रतिमाएँ होती हैं।।** ८३४-८३५।। एक-एक सिद्धार्थवृक्ष के आश्रित, तीन कोटों से वेष्टित पीठत्रय के ऊपर **चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८३६।।** कल्पभूमियों में स्थित सिद्धार्थ कल्पवृक्ष, क्रीडनशालाएँ और प्रासाद बारह से गुणित अपने-अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई के समान ऊँचाई वाले होते हैं।। ८३७।।

समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

बभासे वनमाशोकं शोकापनुदमङ्गिनाम्।
रागं वमदिवात्मीयमारक्तैः पुष्पपल्लवैः[1]।।१८०।।

पर्णानि सप्त विभ्राणं वनं सप्तच्छदं बभौ।
सप्तस्था नानि बाभर्तुर्दर्शयत्प्रति पर्व यत्।।१८१।।

चाम्पकं वनमत्राभात् सुमनोभरभूषणम्।
वने दीपाङ्गवृक्षाणां विभुं भक्तुमिवागताम्।।१८२।।

कम्रमाम्रवनं रेजे कलकण्ठीकलस्वनैः।
स्तुवानमिव भक्त्यैनमीशानं पुण्यशासनम्।।१८३।।

अशोकवनमध्येऽभूदशोकानोकहो महान्।
हैमं त्रिमेखलं पीठं समुत्तुङ्गमधिष्ठितः।।१८४।।

समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

उन चारों वनों में से पहला **अशोक वन** जो कि प्राणियों के शोक को नष्ट करने वाला था, लाल रंग के फूल और नवीन पत्तों से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने अनुराग (प्रेम) का ही वमन कर रहा हो।।१८०।।

प्रत्येक गाँठ पर सात-सात पत्तों को धारण करने वाले **सप्तच्छद वृक्षों का दूसरा वन** भी सुशोभित हो रहा था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षों के प्रत्येक पर्व पर भगवान् के सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य आदि सात परम स्थानों को ही दिखा रहा हो।।१८१।। फूलों के भार से सुशोभित **तीसरा चम्पक वृक्षों का वन** भी सुशोभित हो रहा था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान की सेवा करने के लिए दीपांग जाति के कल्पवृक्षों का वन ही आया हो।।१८२।। तथा कोयलों के मधुर शब्दों से मनोहर **चौथा आम के वृक्षों** का वन भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पवित्र उपदेश देने वाले भगवान् की भक्ति से स्तुति ही कर रहा हो।।१८३।। अशोक वन के मध्य भाग में एक बड़ा भारी अशोक का वृक्ष था जो कि सुवर्ण की बनी हुई तीन कटनीदार ऊँची पीठिका पर स्थित था।।१८४।। वह वृक्ष, जिनमें चार-चार गोपुर द्वार बने हुए हैं ऐसे तीन

१. आदिपुराण पर्व-२२, पृ. ५२४ से ५२६ तक।

चतुर्गोपुरसंबद्धत्रिसालपरिवेष्टितः ।
छत्रचामरभृङ्गारकलशाद्यैरुपस्कृतः ।।१८५।।

जम्बूद्वीपस्थलीमध्ये भाति जम्बूद्रुमो यथा।
तथा वनस्थलीमध्ये स बभौ चैत्यपादपः।।१८६।।

शाखाग्रव्याप्तविश्वाशः स रेजेऽशोकपादपः।
अशोकमयमेवेदं जगत्कर्तुमिवोद्यतः।।१८७।।

सुरभीकृतविश्वाशैः कुसुमैः स्थगिताम्बरः।
सिद्धाध्वानमिवारुन्धन् रेजेऽसौ चैत्यपादपः।।१८८।।

गारुडोपलनिर्माणैः पत्रैश्चित्रैश्चितोऽमितः।
पद्मरागमयैः पुष्पस्तबकैः परितो वृतः।।१८९।।

हिरण्मयमहोदग्रशाखो वज्रेबद्धबुध्नकः।
कलालिकुलझङ्कारैस्तर्जयन्निव मन्मथम् ।।१९०।।

सुरासुरनरेन्द्रान्तरक्षेमालानविग्रहः ।
स्वप्रभापरिवेषेण द्योतिताखिलदिङ्मुखः।।१९१।।

कोटों से घिरा हुआ था तथा उसके समीप में ही छत्र, चमर, भृङ्गार और कलश आदि मंगलद्रव्य रखे हुए थे। १८५।। जिस प्रकार जम्बूद्वीप की मध्य भूमि में जम्बूवृक्ष सुशोभित होता है उसी प्रकार उस अशोक वन की मध्य भूमि में वह **अशोक नामक चैत्यवृक्ष सुशोभित** हो रहा था।।१८६।। जिसने अपनी शाखाओं के अग्रभाग से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर रखा है ऐसा वह अशोक वृक्ष ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो समस्त संसार को अशोकमय अर्थात् शोकरहित करने के लिए ही उद्यत हुआ हो।।१८७।। समस्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाले फूलों से जिसने आकाश को व्याप्त कर लिया है ऐसा वह चैत्यवृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सिद्ध-विद्याधरों के मार्ग को ही रोक रहा हो।।१८८।। वह वृक्ष नीलमणियों के बने हुए अनेक प्रकार के पत्तों से व्याप्त हो रहा था और पद्मराग मणियों के बने हुए फूलों के गुच्छों से घिरा हुआ था।।१८९।। सुवर्ण की बनी हुई उसकी बहुत ऊँची-ऊँची शाखाएँ थीं, उसका देदीप्यमान भाग वज्र का बना हुआ था तथा उस पर बैठे हुए भ्रमरों के समूह जो मनोहर झंकार कर रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव की तर्जना ही कर रहा हो।।१९०।। वह चैत्यवृक्ष सुर, असुर और नरेन्द्र आदि के मनरूपी हाथियों के बाँधने के लिए खंभे के समान था तथा उसने अपने प्रभामण्डल से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रखा

रणदालम्बिघण्टाभिर्बाधिरीकृतविश्वभूः।
भूर्भुवः स्वर्जयं भर्तुः प्रतोषादिव घोषयन् ।।१९२।।
ध्वजांशुकपरा मृष्टनिर्मेघघनपद्धतिः।
जगज्जनाङ्गसंलग्नमार्गः परिमृजन्निव।।१९३।।
मूर्ध्ना छत्रत्रयं बिभ्रन्मुक्तालम्बनभूषितम् ।
विभोस्त्रिभुवनैश्वर्य विना वाचेव दर्शयन् ।।१९४।।
भ्रेजिरे बुध्नभागेऽस्य प्रतिमा दिक्चतुष्टये।
जिनेश्वराणामिन्द्राद्यैः समवाप्ताभिषेचनाः।।१९५।।
गन्धस्त्रग्धूपदीपाघ्यैः फलैरपि सहाक्षतैः।
तत्र नित्यार्चनं देवा जिनार्चानां वितेनिरे।।१९६।।
क्षीरोदोदकधौताङ्गीरमलास्ता हिरण्मयीः।
प्रणिपत्यार्हतामर्चाः प्रानर्चुर्नृसुरासुराः।।१९७।।

था।।१९१।। उस पर जो शब्द करते हुए घंटे लटक रहे थे उनसे उसने समस्त दिशाएँ बहरी कर दी थीं और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था कि भगवान् ने अधोलोक, मध्यलोक और स्वर्गलोक में जो विजय प्राप्त की है सन्तोष से मानो वह उसकी घोषणा ही कर रहा हो।।१९२।। वह वृक्ष ऊपर लगी हुई ध्वजाओं के वस्त्रों से पोंछ-पोंछकर आकाश को मेघरहित कर रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो संसारी जीवों की देह में लगे हुए पापों को ही पोंछ रहा हो।।१९३।।

वह वृक्ष मोतियों की झालर से सुशोभित तीन छत्रों को अपने सिर पर धारण कर रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के तीनों लोकों के ऐश्वर्य को बिना वचनों के ही दिखला रहा हो।।१९४।। **उस चैत्यवृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में जिनेन्द्रदेव की चार प्रतिमाएँ थीं जिनका इन्द्र स्वयं अभिषेक करते** थे।।१९५।। **देव लोग वहाँ पर विराजमान उन जिनप्रतिमाओं की गन्ध, पुष्पों की माला,धूप, दीप, फल और अक्षत आदि से निरन्तर पूजा किया करते** थे।।१९६।। क्षीरसागर के जल से जिनके अंगों का प्रक्षालन हुआ है और जो अतिशय निर्मल हैं ऐसी सुवर्णमयी अरहंत की उन प्रतिमाओं को नमस्कार कर मनुष्य, सुर और असुर सभी उनकी पूजा करते थे।।१९७।। कितने ही उत्तम देव अर्थ से भरी हुई स्तुतियों से उन प्रतिमाओं की स्तुति करते थे, कितने ही उन्हें नमस्कार करते थे और कितने ही उनके गुणों का स्मरण कर तथा चिन्तवन कर गान करते थे।।१९८।। **जिस प्रकार अशोक वन में अशोक**

स्तुवन्ति स्तुतिभिः केचिदर्थ्याभिः प्रणमन्ति च।
स्मृत्वावधार्य गायन्ति केचित्स्म सुरसत्तमाः।।१९८।।
यथाशोकस्तथान्येऽपि विज्ञेयाश्चैत्यभूरुहाः।
वने स्वे स्वे सजातीया जिनबिम्बेद्धबुध्नकाः।।१९९।।
अशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकश्चूत एव च।
चत्वारोऽमी वनेष्वासन् प्रोत्तुङ्गाश्चैत्यपादपाः।।२००।।
चैत्याधिष्ठितबुध्नत्वादूढतन्नामरूढयः ।
शाखिनोऽमी विभान्ति स्म सुरेन्द्रैः प्राप्तपूजनाः।।२०१।।
फलैरलंकृता दीप्राः स्वपादाक्रान्तभूतलाः।
पार्थिवाः सत्यमेवैते पार्थिवाः पत्रसंभृताः।।२०२।।
प्रव्यञ्जितानुरागाः स्वैः पल्लवैः कुसुमोत्करैः।
प्रसादं दर्शयन्तोऽन्तर्विभुं भेजुरिमे द्रुमाः।।२०३।।

नाम का चैत्यवृक्ष है उसी प्रकार अन्य तीन वनों में भी अपनी-अपनी जाति का एक-एक चैत्यवृक्ष था और उन सभी के मूलभाग जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से देदीप्यमान थे।।१९९।। इस प्रकार ऊपर कहे हुए चारों वनों में क्रम से **अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के चार बहुत ही ऊँचे चैत्यवृक्ष थे।।२००।।**

मूलभाग में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा विराजमान होने से जो 'चैत्यवृक्ष' इस सार्थक नाम को धारण कर रहे हैं और इन्द्र जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वे चैत्यवृक्ष बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे।।२०१।। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न हुए वे वृक्ष सचमुच ही पार्थिव अर्थात् पृथ्वी के स्वामी—राजा के समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक फलों से अलंकृत होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी अनेक फलों से अलंकृत थे, राजा जिस प्रकार तेजस्वी होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी तेजस्वी (देदीप्यमान) थे, राजा जिस प्रकार अपने पाद अर्थात् पैरों से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त किया करते हैं (समस्त पृथ्वी में अपना यातायात रखते हैं) उसी प्रकार वे वृक्ष भी अपने पाद अर्थात् जड़ भाग से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त कर रहे थे (समस्त पृथ्वी में उनकी जड़ें फैली हुई थीं) और राजा जिस प्रकार पत्र अर्थात् सवारियों से भरपूर रहते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी पत्र अर्थात् पत्तों से भरपूर थे।।२०२।। वे वृक्ष अपने पल्लव अर्थात् लाल-लाल नयी कोंपलों से ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्तरंग का अनुराग (प्रेम) ही प्रकट कर रहे हों और फूलों के समूह से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो हृदय की

तरूणामेव तावच्चेदीदृशो विभवोदयः।
किमस्ति वाच्यमीशस्य विभवेऽनीदृशात्मनः।।२०४।।

समवसरण में छठी भूमि में सिद्धार्थ वृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

पुष्पपल्लवोज्ज्वलेषु कल्पपादपोरुकाननेषु हारिषु
श्रीमदिन्द्रवन्दिताः स्वबुध्नसुस्थितेद्धसिद्धबिम्बका द्रुमाः।
सन्ति तानपि प्रणौम्यमूं नमामि च स्मरामि च प्रसन्नधीः
स्तूपपंक्तिमप्यमूं समग्ररत्नविग्रहां जिनेन्द्रबिम्बिनीम्[१]।।१९०।।

प्रसन्नता ही दिखला रहे हों। इस प्रकार वे वृक्ष भगवान् की सेवा कर रहे थे।।२०३।। जबकि उन वृक्षों का ही ऐसा बड़ा भारी माहात्म्य था तब उपमारहित भगवान् वृषभदेव के केवलज्ञानरूपी विभव के विषय में कहना ही क्या है—वह तो सर्वथा अनुपम ही था।।२०४।।

समवसरण में छठी भूमि में सिद्धार्थ वृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

फूल और पल्लवों से देदीप्यमान और अतिशय मनोहर कल्पवृक्षों के बड़े-बड़े वनों में लक्ष्मीधारी इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय तथा जिनके **मूलभाग में सिद्ध भगवान् की देदीप्यमान प्रतिमाएँ विराजमान हैं ऐसे जो सिद्धार्थ वृक्ष हैं,** मैं प्रसन्नचित होकर उन सभी की स्तुति करता हूँ, उन सभी को नमस्कार करता हूँ और उन सभी का स्मरण करता हूँ, इसके सिवाय जिनका समस्त शरीर रत्नों का बना हुआ है और जो जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से सहित हैं ऐसे स्तूपों की पंक्ति का भी मैं प्रसन्नचित होकर स्तवन, नमन तथा स्मरण करता हूँ।।१९०।।

---

१. आदिपुराण पृ. ५७०।

चैत्यवंदनाष्टक

(गणिनी ज्ञानमती विरचित)

त्रिभुवन के जितने चैत्यालय, अकृत्रिम उनको नित वंदूं।
भव भव के संचित पाप पुंज, उन सबको इक क्षण में खंडूं।।
असुरों के चौंसठ लाख नागसुर, के चौरासी लाख कहे।
वायुसुर के छ्यानवे लाख सुपरण के बाहत्तर लक्ष कहे।।१।।

विद्युत् अग्नी स्तनित उदधि, दिक् द्वीपकुमार भवनवासी।
इन छह में पृथक्-पृथक् जिनगृह, छीयत्तर लक्ष सुगुण-राशी।।
सब लक्ष बहत्तर सात कोटि, ये जिनगृह भवनालय सुर के।
ये अधोलोक के जिनमंदिर, नितप्रति वंदूं अंजलि करके।।२।।

इस मध्यलोक के पांच मेरु के, अस्सी तीस कुलाचल के।
रजताचल के इक सौ सत्तर, अस्सी हैं वक्षाराचल के।।
गजदंत गिरी के बीस भवन, जंबू शाल्मलि के दश मानें।
इष्वाकृति नग के चार चार, मनुजोत्तर के भी भव हानें।।३।।

अंजनगिरि के चउ दधिमुख के, सोलह रतिकर के बत्तिस हैं।
नंदीश्वर द्वीप जिनालय ये, बावन अतिशय गुणमंडित हैं।।
कुंडलगिरि रुचकगिरी के भी, हैं चार चार सब मिल करके।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर मध्यलोक भर के।।४।।

व्यंतरवासी ज्योतिष सुर के, सब संख्यातीत जिनालय हैं।
इक ऊपर ऊर्ध्वलोक में भी, वैमानिक वंदित आलय हैं।।
सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर, बत्तीस लाख शाश्वत मानो।
ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस, हैं लाख जिनालय सरधानो।।५।।

सानत्कुमार में बारह लख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष।
दिव ब्रह्मयुगल में चार लाख, लांतव युग में पच्चास सहस।।
चालिस हजार दिव शुक्र युगल में, छह हजार युग शतार में।
जिननिलय सात सौ आनत औ, प्राणत आरण अच्युत दिव में।।६।।

ग्रैवेयक तीन अधो में हैं, इक सौ ग्यारह मध्यम त्रय में।
हैं इक सौ सात तथा जिनगृह, हैं इक्यानवे ऊर्ध्व त्रय में।।

नव अनुदिश में नव जिनमंदिर, पंचानुत्तर में पांच कहें।
इन सबका वंदन करते ही, भविजन मनवांछित सिद्धि लहें।।७।।

तीनों लोकों के ये जिनगृह, सब आठ कोटि छप्पन सुलक्ष।
सत्तानवे सहस चार सौ औ, इक्यासी प्रमित कहे शाश्वत।।
नव सौ पच्चीस कोटि त्रेपन, हैं लाख सताइस सहस सही।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, प्रति जिनगृह इक सौ आठ कहीं।।८।।

सब जिनगृह में शाश्वत अनुपम, मानस्तंभादिक रचनायें।
वर्णन पढ़ते ही जन मन में, दर्शन की इच्छा प्रकटायें।।
जिनबिंब पांच शत धनुष तुंग, उन वीतराग छवि मनहारी।
मैं केवल "ज्ञानमती" हेतू, नित नमूँ जिनालय सुखकारी।।९।।

-दोहा-

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१०।।

प्रशस्ति

-चौबोल छंद-

**श्री शांति कुंथु अरनाथ प्रभू ने, जन्म लिया इस धरती पर।
यह हस्तिनागपुरि इंद्रवद्य, रत्नों की वृष्टि हुई यहाँ पर।।
यहाँ जम्बूद्वीप बना सुंदर, जिनमंदिर हैं अनेक सुखप्रद।
मेरा यहाँ वर्षायोग काल, स्वाध्याय ध्यान से है सार्थक।।1।।**

**इस युग के चारित्र चक्री श्री, आचार्य शांतिसागर गुरुवर।
बीसवीं सदी के प्रथमसूरि, इन पट्टाचार्य वीरसागर।।
ये दीक्षा गुरुवर मेरे हैं, मुझ नाम रखा था 'ज्ञानमती'।
इनके प्रसाद से ग्रंथों की, रचना कर हुई अन्वर्थमती।।2।।**

**यह अकृत्रिम चैत्यवृक्ष, संकलित शास्त्र जिन भक्तीवश।
यह रोग शोक दारिद्र्य दुःख, संकट हरने वाला संतत।।
तब तक यह गणिनी ज्ञानमती, कृति चैत्यवृक्ष जयशील रहे।।
जब तक चौबीसों जिनवर का, जिनशासन जग में मान्य रहे।।3।।**

समवसरण चैत्यवृक्ष स्तोत्र

–शंभु छंद–

चौबिस जिनवर के समवसरण में, चौथी उपवन भू मानी है।
चारों दिश इक इक चैत्य वृक्ष, चहुँदिश जिनप्रतिमा मानी हैं।।
चारों दिश की जिन प्रतिमा के, सन्मुख में मानस्तंभ खड़े।
मैं वंदूं शीश नमा करके, दिन पर दिन सुख सौभाग्य बढ़े।।1।।

जय जय श्री जिनवर समवसरण, जयजय चौथी उपवन भूमी।
जय जय मणिमय जिन चैत्यवृक्ष, जय जय सुर नर वंदित भूमी।।
जय जय गणधर गुरु से वंदित, जयजय मुनिगण विहरण भूमी।
जय जय अशोक सप्तच्छद अरु, चंपक व आम्रवन की भूमी।।2।।

परकोटा दूजा स्वर्णमयी, चउ गोपुर द्वारों से युत है।
व्यंतर सुर मुद्गर लेकर के, जिनभक्त वहाँ पर रक्षक हैं।।
तोरण द्वारों के उभय तरफ, अठ विध के मंगल द्रव्य धरे।
प्रत्येक एक सौ आठ कहे, ये सर्व अमंगल दोष हरें।।3।।

उसके आगे वेष्टित करके, उपवन भूमी अति शोभ रही।
दिशक्रम से अशोक सप्तच्छद, चंपक व आम्रवन दिखें वहीं।।
चारों दिश इक इक चैत्य वृक्ष, प्रभु से बारह गुणिते ऊँचे।
प्रत्येक चैत्यतरु में चारों, दिश इक-इक जिन प्रतिमा दीखें।।4।।

ये आठ प्रातिहार्यों संयुत, मणिमय श्रीजिन प्रतिमायें हैं।
हर प्रतिमाओं के सन्मुख इक, इक मानस्तंभ कहायें हैं।।
ये तीन कोट से परिवेष्टित त्रय कटनी के ऊपर शोभें।
मानस्तंभों के चारों दिश इक इक जिन प्रतिमायें शोभें।।5।।

चौबिस जिनवर के उपवन में, छ्यानवे चैत्यतरु माने हैं।
उनमें त्रय शतक सुचौरासी, मणिमय जिनबिंब बखाने हैं।।
इनके मानस्तंभ तीन शतक चौरासी ही हो जाते हैं।
चारों दिश जिनवर बिंब सभी पंद्रह सौ छत्तिस गाते हैं।।6।।

इन जिनबिंबों को भक्ती से, जो नितप्रति वंदन करते हैं।
वे सर्व मनोरथ पूर्ण करें, क्रम से शिव लक्ष्मी वरते हैं।।

इन उपवन में कहिं बावड़ियाँ, कहिं क्रीड़ा पर्वत दिखते हैं।
कहिं भवन बने सुंदर ऊँचे, इनमें सुर नर नित रमते हैं।।7।।

पूरबदिशवन में बावड़ियाँ, नन्दा नन्दोत्तर आनंदा।
नन्दवती व अभिनन्दिनी, नन्दिघोषा जलभरी महानंदा।।
जो जन इनकी पूजा करते, वे उदय सुफल को पाते हैं।
वापी से पुष्पों को लेकर, जिनबिंब पूजते जाते हैं।।8।।

दक्षिणदिश विजय तथा अभिजय, जैत्री व वैजयन्ती वापी।
अपराजित जयोत्तरा नामा, ये यजत विजय फल को देतीं।।
पश्चिमदिश कुमुदा नलिनी अरु, पद्मा पुष्करा वापियाँ हैं।
विश्वोत्पला, कमला ये छह, यजते प्रीति फल देती हैं।।9।।

उत्तर में प्रभासा भासवती भासा, सुप्रभा भरीं जल से।
पुन भानुमालिनी स्वयंप्रभा, ख्याती फल देतीं पूजन से।।
वापी जल से स्नान किये, भवि जन इक भव को देखे हैं।
उस जल अवलोकन से निज के ही सात भवों को देखे हैं।।10।।

इन उदय और प्रीती फलदा, बावड़ियों के मधि मारग के।
द्वय तरफी तीन तीन खन की, बत्तीस नाट्यशाला दीखें।।
प्रत्येक में बत्तिस बत्तिस, ज्योतिषि, देवी नर्तन करती हैं।
वे हाव भाव से तन्मय हो, जिनवर गुण कीर्तन करती हैं।।11।।

हम नित्य नमें जिन प्रतिमा को सारे कलिमल धुल जावेंगे।
निज आत्म सुधारस पीकर के, निजमें ही तृप्ती पावेंगे।।
सब आधि व्याधि पीड़ा संकट, इक क्षण में ही नश जावेंगे।
निज 'ज्ञानमती' केवल करके, सिद्धालय में बस जावेंगे।।12।।

-दोहा–

नासा दृष्टी सौम्य छवि, जिनवर सम जिनबिंब।
नमूँ नमूँ मस्तक नमाँ, पाऊँ सौख्य अनिंद्य।।13।।